वितस्ता



स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग
कश्मीर मण्डल
जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंहबाग, श्रीनगर, कश्मीर भारत।

वितस्ता

(अगस्त – १९६६)

सम्पादक :
डा० रमेश कुमार शर्मा,
अध्यक्ष. स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंहबाग, श्रीनगर, कश्मीर, भारत।

——

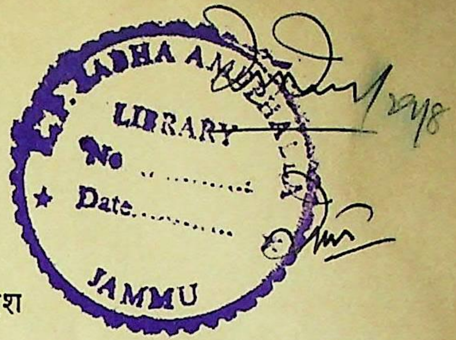
सहायक :
डा० मोहिनी कौल
डा० मु० अयूब खाँ
श्री भूषणलाल कौल
राजकुमारी राज़दान (छात्र सम्पादक; उत्तरार्द्ध)
फूला कुमारी मोज़ा (छात्र सम्पादक; पूर्वार्द्ध)

——

प्रकाशक :
हिन्दी परिषद्
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंहबाग, पो० नसीमबाग, श्रीनगर,
कश्मीर, भारत।

एक प्रति— २) रु०

जि० २; अंक १



क्रम

मुख्यमंत्री का संदेश

ज़िन्दगी का ख़त	१	श्यामा सेठी एम० ए० (पूर्वार्द्ध)
कश्मीर-एक साँस्कृतिक संश्लेषण	४	राजकुमारी राज़दान एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
इलाचन्द्र जोशी; जीवन-दर्शन	८	सन्तोष ज़ारू एम० ए० (अनुसंधित्सु)
कश्मीरी लोक-गीत	१४	बन्सीलाल पंडित एम० ए० (अनुसंधित्सु)
कश्मीरी भाषा ध्वनि-विचार	२१	डा० प्राणनाथ तृछल
पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'— एक परिचय	२६	श्री भूषणलाल कौल (विभाग में प्राध्यापक)
निराला की दार्शनिकता के स्रोत	३७	डा० मुहम्मद अयूबखाँ (विभाग में प्राध्यापक)
लल्लेश्वरी और कबीर के काव्य में समानताएँ	४४	डा० मोहिनी कौल (विभाग में (प्राध्यापक)
मुख़्तार साहब—मेरीनज़र में	४८	डा० शकीलुर् रहमान (रीडर, उर्दू तथा फ़ारसी विभाग)
आधुनिक समालोचना और रीतिकाल	५२	डा० रमेश कुमार शर्मा
हिन्दी परिषद्; इस वर्ष की गतिविधियाँ	६७	राजकुमारी राज़दान (मंत्री, हिन्दी, परिषद्)
सम्पादकीय	७३	डा० रमेशकुमार शर्मा

——





Chief
~~PRIME~~ MINISTER
JAMMU AND KASHMIR

No:- 332/C/7-65
Dated 5.6.65

संदेश

जम्मू व कश्मीर यूनिवर्सिटी का स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग वितस्ता नाम से अपनी पत्रिका प्रकाशित करने जा रहा है , यह प्रसन्नता की बात है । स्नातकोत्तर छात्रों के लिए एक शोध व गवेषणा - सम्बंधी पत्रिका की नितान्त आवश्यकता होती है , जिस द्वारा वे शिक्षा के साथ साथ साहित्य - सेवा भी कर सकें । मुझे आशा है , योग्य व विद्वत्ता - पूर्ण सम्पादकत्व में यह पत्रिका अपना विशिष्ट स्तर बनाए रखे गी ।

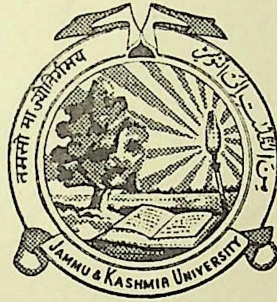
मैं सच्चे हृदय से पत्रिका की सफलता की कामना करता हूं ।

(गुलाम मुहम्मद सादिक)

वितस्ता

[१९६६]

हिन्दी-परिषद्, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, का मुख-पत्र।



अभयं मित्राद् अभयं अमित्राद्
अभयं ज्ञाताद् अभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तम् अभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।। अथर्व १९-१५-६

मैं, अपने मित्रों से निडर रहूं अपने शत्रुओं से न डरूँ, जाने—अनजाने से मुझे भय न हो, हमारी रात्रियाँ भयहीन हों, हमारे दिवस भयहीन हों—सम्पूर्ण दिशाएँ मेरी मित्र हों।

—:□:—

ज़िन्दगी का ख़त

श्यामा सेठी एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

एक ख़त ज़िन्दगी का, उन सब के नाम, जो ज़िन्दगी अकेले जीते हैं:—

सरयू !

तुम्हें यह शिकायत है कि मैं तुम्हें चाहती नहीं, और इसलिए तुम उदास और परेशान रहती हो। पर मैं कहती हूं तुम खुशनसीब हो, वह हर आदमी खुशनसीब है जो ज़िन्दगी का जाम अकेले पीता है, क्यों कि उसका अकेलापन दुनिया को बहुत कुछ दे जाता है। तुम्हें खण्डहरों में घूमने कीकोई चाह नहीं, लेकिन मैं नहीं चाहती तुम महलों के ख्वाब देखो, जहां हर हंसी के पीछे दूसरों के दुख-दर्द छिपे हैं। तुम शायद यकीन न करो लेकिन यहां मेरा भी दम घुटने लगता है। पर इन 'साउण्ड प्रूफ' कमरों में से बाहर निकलने का रास्ता भी नहीं होता। यहां सब कुछ देख-सुन कर ज़बां को बन्द रखना पड़ता है—यही इन महलों का ऐटीकेट है। उस दिन मैंने देखा था, 'बायरन' ने जाम पिया था तुम्हारे नाम पर ....शायद उन सबके नाम पर जो अपनी चोटों को ग़मगीन खुशनसीबी कह कर सह लेते हैं। तुम लोगों के लिए चोट ही अपनी होती है, पर वह दुनिया के लिए खुशनसीबी बन जाती है।

मैं ज़िन्दगी हूँ, मेरे पास दौलत और खुशियों के खज़ाने हैं। लेकिन दिलों की दौलत सिर्फ तुम लोगों के हिस्से में आई है और यही वह खज़ाना है जिसमें कभी कोई कमी नहीं आ पाती। मैं लोगों को समझना चाहती हूँ, लोग एक दूसरे को पहचानना चाहते हैं—पर स्वयं को पहचानते-पहचानते तुम लोग आदमी से 'गोर्की' और 'शैली' बन जाते हो........ टैगोर, अमृता प्रीतम और 'प्रसाद' बन जाते हो। किस्मत तुम से बेवफाई करती है, तुम्हारे हक़ दूसरों को दे डालती है और तुम हंस कर यह सब सह लेते हो। और फिर यह सहना भी हरेक आंसू को नई से नई कृति का रूप देजाता है। हर दर्द को गीत में पिरो देता है।

उस दिन तुम बाग में बेहद उदास बैठीं थीं और मैं तुम्हारे पास आई थी। मैंने चाहा था तुम अपना दर्द मुझसे कहो। मेरे साथ अपनों की सी बातें

करो, वही जो तुम्हारी कहानियों के पात्र एक दूसरे के साथ करते हैं। लेकिन तुमने अपने दर्द के साथ कैसा समझौता कर लिया है कि 'किसी' के लिए भी शिकायत का बोल तुम्हारे होठों को छू नहीं पाता। मैंने तुम्हारी ज़िन्दगी की सबसे आंसू भरी घटना की बात की, तो तुमने मुस्करा कर थके हुए बोल कहेथे—

"नहीं ज़िन्दगी ! यह घटना मेरे साथ तो कभी नहीं हुई। मेरी कहानी की किसी मीना, सौदामनी या मीनल के साथ हुई होगी।"

मैं तुम्हारे हौसले को देख कर परेशान थी। तुमने यही सोच कर दिल को बहला लिया था कि तुम्हारा ग़म तुम्हारा नहीं—तुम्हारी कल्पना के पात्रों का है। फिर मैंने पूछा था—

"सरयू ! तुम जानतीं थीं कि रेगिस्तान में पानी नहीं मिलता फिर भी तुम ....।" मेरा इशारा उसी घटना की ओर था। तुम मेरी बात काट कर बोली थी :—

"मेरी प्यास में कहीं कमी नही थी इसलिए मैंने रेत को पानी समझने की गलती की। पर उसके लिए मैंने अपनी नज़रों को कभी बुरा नही कहा।" मैं भारी दिल से उठ आई थी......शायद इसलिएकि मुझे लगा था कि तुम वह दर्द भी बांटना नहीं चाहती।

सरयू ! तुम लोगों की उदासी कागज़ और कलम सोख लेते हैं और जिन लोगों पर मैं मेहरबान होती हूँ ज़िन्दगी उन्हें सोख लेती है। मैं उन्हें मुहब्बत करती हूँ मेरी यही सबसे भयानक खूबसूरती है। इसीलिए मैं चाहती हूं तुम इस मेहरबानी से बची रहो।

तुम लोगों का एकाकीपन ही तुमसे यह सब लिखवाता है ......। और तुम खुद ही कहा करती हो ऐसी अकेली और हारी हुई ज़िन्दगी जीने से बेहतर है कि इन्सान ज़िन्दा न रहे क्यों कि पुराने गीत जब नये इकतारे पर बजते हैं तो जीने नहीं देते। फिर अपनी कहानियों में पात्रों की ज़िन्दगी को क्यों ऐसे मोड़ पर लाकर छोड़ देती हो जहां वे न तो जी पाते हैं न मरने का ही कोई रास्ता रह जाता है, न उन्हें आगे का रास्ता बुलाता है और न वापिस मुड़ आने की राह बचती है। उन के दिल मूक हादसों की उदासियों में इस तरह डूब जाते हैं कि वे अपने को भी पहचान नहीं पाते। उनके ख़यालों के टूटे हुए गुम्बज क्या कभी तुम्हारा रास्ता नहीं रोकते ?

यकीन मानो सरयू ! मैं तुम लोगों में आकर जीना चाहती हूँ। पर यहां के ऐशो-आराम कुछ इस तरह से मुझे बांधे हुए हैं कि मैं हिल भी नहीं पाती। कभी-कभी मुझे तुम लोगों से भी रश्क हो आता है। तुम लोगों के दिल चोट ज़रूर खाये हुए हैं पर उन घायलों की यही एकाकी पंक्तियां ज़िन्दगी के-मेरे-सब से दिलकश गीत बन जाते हैं। तुम लोगों के ज़ख्मों से रिसते हुए खून से ताज़ा और जीवनदायी महक आती है और जिन लोगों में मैं रहती हूं उनकी महकाई हुई शक्लों में से भी बू आती है—ऐसी लाश की बू, जो बासी हो चुकी हो।

—तुम्हारी 'ज़िन्दगी'

यो नः स्वो अरणो
यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास् तं सर्वे धूर्वन्तु
ब्रह्म वर्म ममान्तरम्॥
शर्म वर्म ममान्तरम्॥ ऋ० ६/७५/१६, सा० १८७२/

(जो भी शत्रु हमें मारना चाहता है, चाहे वह अनजान (विदेशी) हो चाहे हम में से ही कोई हो, सब देवता उसे धराशायी करें; मेरी प्रार्थना और भगवत्-कृपा ही मेरे अन्तर का कवच है)

कश्मीर-एक सांस्कृतिक संश्लेषण

राजकुमारी राज़दान एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

"सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को अति सुन्दर,
को सोभा को भौन, रूप कौ कौन समुन्दर ?"

कश्मीर भारत के उत्तर में उसके शीर्ष-स्थान की तरह सुशोभित है। इस देश का प्राकृतिक सौन्दर्य चिरकाल से कवियों, मनीषियों और दार्शनिकों की प्रेरणा का विषय रहा है। यहां प्रकृति नित्य नूतन सौंदर्य का वरण कर उल्लासित होती रहती है। प्रातः पूर्वदिशा से उदित होते हुए भगवान भास्कर की स्वर्गीय किरणें और संध्याकाल को अस्ताचल की ओर जाते हुए उनका अस्तंगत ऐश्वर्य मानव-जीवन के उत्थान और पतन की सूचना देने वाला होता है। अंधकार के रूप में नीले वस्त्र से आवृत्त नक्षत्रों से झिलमिलाती रजनी का आगमन और उस नीरव-प्रशान्त वातावरण में कल-कल निनाद करते हुए झरनों का संगीतमय स्वर हृदय को अमृत-सागर में डुबो देता है। यहां उषा नागरी का पदार्पण यदि ज़िन्दगी के गीत गाते हुए होता है तो यहां की शाम विरह-विधुरा नायिका की तरह जन-मानस पर अपनी आहों-कराहों का संसार छोड़कर चली जाती है। प्राकृतिक सुषुमा की अनिन्द्य सुन्दरी इस उपत्यका का सौन्दर्य देखते ही बनता है —जिसके अन्तर्गत यहां के पर्वतीय प्रदेश, झील और तालाब हैं। सौंदर्य का यह विराट रूप अन्यत्र कहां ?

कश्मीर प्रदेश ने अपने प्राकृतिक सौंदर्य में इतनी प्रसिद्धि पायी, इसके विषय में यह जानना आवश्यक है कि प्राचीन काल में यहां क्या था ? पौराणिक गाथा के अनुसार यहां पर एक सर था, जिसको 'सतीसर' के नाम से पुकारते थे, क्योंकि यहां पर हिमाचल की पुत्री सती जल-विहार करने के लिए आती थी। जल-प्रलय के समय सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा के लिए एक पहाड़ की चोटी पर ही प्रजापति मनुकी नौका ने आश्रय लिया, जिसको "नौबन्धन" कहते हैं, अथर्व-वेद में इसे 'नौका-प्रभ्रंशन' तथा शतपथ ब्राह्मण में 'मनारवसर्पण' नाम से पुकारा गया है। कश्यपमुनि ने यहां आकर भगवान शिव और विष्णु की उपासना की जिससे वे प्रसन्न होगये, इसके उपरान्त जलशायी 'नारायण' की उपासना की और उन्होंने प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्रको 'खादनयार' के पास पार करवा कर पानी को निकाल दिया, उस गाँव को जलाशरी कहते हैं। कश्यपमुनि की तपोभूमि

होने के कारण ही इसका नाम पहले 'कश्यप मीर', (मीर=सरोवर, झील,) पड़ गया, बाद में यही 'कश्यप मीर' कश्मीर बना, और लोगों ने यहां निवास किया। उन्हीं का पुत्र नीलराज राजा बन गया। 'नीलमत पुराण' के अनुसार झील में जलोंद्भव नामी राक्षस हारी पर्वत के पास रहता था। वह निकल कर लोगों को दुःख देता था। लोगों ने निराश होकर दीन-रक्षक देवी की प्रार्थना की और माला का आश्रय लिया। देवी प्रसन्न हुई और उन्होंने राक्षस का वध करने के लिए एक 'मैंना' के रूप में झील के ऊपर पत्थर फैंके जिससे सम्पूर्ण झील ढक गयी, राक्षस मारा गया और जनता को दुःख से त्राण मिला। कश्मीरी भाषा में मैंना को (हंर) कहते हैं, इसी नाम-सादृश्य पर यहां के पर्वत का नाम "हारी पर्वत" पड़ गया।

'कल्हण' के अनुसार इस कश्मीर प्रदेश में बहुत से भूचाल आते थे, एक भूचाल का झटका अधिक समय तक रहा, जिसका केन्द्र (एपीसेन्टर) बारामूला था। उसी समय पहाड़ के फट जाने से यहां घाटी और समतल पृथ्वी का निर्माण हुआ। बर्नियर ने लिखा है :— "Whole country was, in former times, one vast lake and...an outlet for the waters was opened by a certain aged saint (Kasyapa) who miraculously cut the mountain of Baramoule." भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार भी पूर्वकाल में यहां एक विशालझील थी जिसमें एक वृहत हिमखण्ड तैरता रहता था। इस हिमखण्ड (आइसबर्ग; बर्ग=पर्वत) का दो तिहाई भाग जलमग्न रहता था। इसकी चलायमान दशा के कारण यह झील के किनारे के निवासियों के लिए सर्वदा भय तथा खतरे का कारण बना रहता था। संभवतः इसी में जलोद्भव राक्षस की, कल्पना का आधार है। इस हिमखण्ड का नाश ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि से वही महत्व रखता है जो कि गंगोत्री ग्लेशियर को तोड़कर भागीरथ द्वारा गंगा की धारा की मुक्ति रखती है।

मानव अपनी कल्पनाओं को सार्थक बनाने के लिए सदैव कर्मरत रहता है, उसके हृदय की भावनाएं जहां उसे सत्य का अन्वेषण करने के लिए प्रेरित करती हैं, वहां उसका मस्तिष्क सत्य का उद्घाटन भी करता है, मानव ने विज्ञान के आविष्कारों से विश्व को छोटा बना दिया है। अतः वैज्ञानिकों के विवेचन के अनुसार यहां पर जल ही जल था, फिर भूकम्प के आने से पुनः दो पहाड़ियाँ हुई और बीच में समतल मैदान रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि कश्मीर के प्राचीन स्वरूप के विषय में भिन्न भिन्न मत हैं।

कश्मीर प्रदेश जिसके चारों ओर हिमालय पर्वत है, और उसके ऊपर श्वेत नदियों की धारा, कल-कल करते हुए झरने ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो ऊपर चन्द्रहार ही धारण किया हो। इसके अतिरिक्त एक ओर हारीपर्वत का किला और दूसरी ओर दृष्टि डालने पर अन्य पर्वत शिखर पर शंकराचार्य मन्दिर दीख पडता है। वास्तव में 'शंकराचार्य' राजा संध्यमान के द्वारा बनाया गया था, उसने इसे इस आशा से बनवाया था कि यह कल्पान्त तक रहे। बाद में शंकराचार्य ने आकर इसकी पूर्ति की और इसका नाम 'शंकराचार्य' पड़ गया।

इस प्रकार कश्मीर घाटी की उत्पति हुई। यहां आरम्भ में नाग और पिशाच रहते थे, परन्तु कश्यप जो जो स्वयं ब्राह्मण थे, उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को लाकर यहां पर बसाया परन्तु नाग और पिशाच लोगों ने बाहर के लोगों के साथ रहना पसन्द नहीं किया और ऊपर पहाडों में भाग गये। धीरे-धीरे हिन्दुओं ने यहां पर अपना अधिकार जमा लिया। पुराणों के अनुसार स्वयं विष्णु ने मत्स्य के रूप में कश्मीर की भूमि पर अवतार लिया, और उनके नाम पर कौंसरनाग तथा वैष्णवपाद आज भी विद्यमान हैं। अतः कश्मीर में अनेक महर्षियों, मुनियों ने वास किया, महापुरुषों ने अवतार लिया और अमर उपदेशकों ने इस भूमि को पवित्र किया। कश्मीर प्रदेश बहुत प्राचीन काल से महर्षियों, मुनियों, आलोचकों और कवियों आदि की जन्म भूमि रहा है। यहां के प्राकृतिक वैभव ने न केवल यहां के कवियों को ही प्रभावित किया वरन् अन्य देश के कवि भी आकर्षित हुए हैं। यहां के कवियों ने राष्ट्र-काव्य, प्रेम-काव्य, अध्यात्म-काव्य आदि का सृजन किया। कश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने अपनी सुन्दर मातृ-भूमि को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए लिखा था कि "कुंकम-केसर और काव्य-विलास परस्पर सगे भाई हैं, शारदा देश को छोड़कर दूसरी जगह मैंने इनको साथ-साथ नही देखा।" कल्हण का जन्म भी अति प्रखर बुद्धि वाले कश्मीरी ब्राह्मण कुल में ही हुआ था। उनके ग्रन्थों में अनुभव की पैनी सूझ, सहानुभूति, विद्वत्ता और विवेक का एक साथ विलक्षण समन्वय पाया जाता है। उनकी "राजतरंगिणी" भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। राजनीति और समर-नीति दोनों का सूक्ष्म परिचय इस ग्रन्थ में पाया जाता है। यहां के मम्मट और कालिदास को कौन भूल सकता है। प्राचीन काल में यहां संगीत-कला की भी पर्याप्ति उन्नति हुई। सारङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' पुस्तक में संस्कृत भाषा में राग-विद्या के सम्बन्ध में लिखा है। कश्मीर प्रदेश प्राचीन काल से ही कला का प्रेमी रहा है जिसके अवशेष भिन्न भिन्न स्थानों पर खुदाई से प्राप्त हुए हैं। जहां अन्य कलाकारों के चित्र रूप-प्रधान हैं, वहां काश्मीरी चित्र-कला तथा मूर्तिकला भाव-

प्रधान है। कश्मीर के कलाकारों ने बाह्य अंग-प्रत्यंगों की सूक्ष्मता पर ही ध्यान नहीं दिया अपितु आन्तरिक और मानसिक भावों को अभिव्यक्त करने में उन्हों ने अपनी शक्ति का परिचय दिया। खुदाई के उपरान्त असंख्यों मिट्टी, पत्थर तथा धातु की मूर्तियां मिली हैं। संग-तराशी अर्थात् पत्थरों के काम में कश्मीरी प्रसिद्ध रहे हैं। 'मार्तण्ड' के खण्डहर इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कला-कौशल और संस्कृति की दृष्टि से कश्मीर का स्थान विश्व में अन्यतम है।

कश्मीर में शैव मत का प्रचार था, लोग शिव के ही उपासक थे और शिव को 'अमृतशरीर' नाम से पुकारते थे। इसका वैदिक रूप यह था कि शिव या रुद्र परमात्मा का एक नाम है। ऋग्वेद में रुद्र का उल्लेख प्रायः 'संहारक' शक्ति के रूप में हुआ है। दुष्टों का दमन व सृष्टि का प्रलय करते हुए वह अपने रुद्र रूप को प्रकट करता है। कश्मीरी लोग शिवलिंग की पूजा करते थे। कहा जाता है कि संसार की सर्वोपरि उत्पादक शक्ति का प्रतीक लिंग है। इसीलिए संसार की यह रहस्यमयी मूलशक्ति लिंग उस शिव का प्रतीक है। विष्णु एवं शिव के अतिरिक्त गणपति एवं अन्य देवी देवताओं की पूजा भी यहां प्रचलित है, यहां यज्ञों को सर्वोपरि महत्व दिया जाता था। आज भी यहां का मुख्य त्योहार शिवरात्री है।

मानव का स्वभाव एक-रस नहीं रह सकता, उसमें क्षण क्षण में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, इस लिए समय के परिवर्तन के कारण जन समाज में भी परिवर्तन होता है। इसका अपवाद कश्मीर प्रदेश भी नहीं, फिर भी कश्मीर देश :—

"कवि गन कौ कलपना कल्पतरु काम धेनु सी।
मुनियन कौ तप धाम, ब्रह्म आनन्द ऐन सी॥
रसिकन कौ रस धाम, प्रान सर्वस जीवन धन।
प्रकृति प्रेमिन को सु ल क्रीड़ा-कलोल बन॥

कर्मणा बध्यते जन्तुः विद्यया तु प्रमुच्यते। महाभारत, शान्तिपर्व, २४०,७/
(सब उत्पन्न प्राणी कर्म द्वारा बन्धन में फंसते हैं और ज्ञान द्वारा उनका उद्धार होता है)

इलाचन्द्र जोशी: जीवन-दर्शन

सन्तोष ज़ारू, एम० ए० (अनुसंधित्सु)

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी-उपन्यास सहित्य में एक नवीन धारा को लेकर अवतरित हुए हैं। इस धारा के अन्तर्गत उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को महत्त्व दिया गया है।

जोशी जी का जीवन के प्रति अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जिसको कि उन्होंने अपनी रचनाओं में स्पष्ठ किया है। इस दृष्टिकोण में पाश्चात्य विद्वान् फ्रायड, युंग और एडलर का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है। जोशी जी फ्रायड से प्रभावित होते हुए भी अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व रखते हैं।

फ्रायड ने मानव-मन की तीन अवस्थाओं (चेतन, अर्द्धचेतन तथा अवचेतन) का वर्णन करते हुए सबसे अधिक महत्त्व अवचेतन मन को दिया था। उसने मनुष्य के अवचेतन मन का विश्लेषण किया और कुछ तथ्यों को खोज निकाला। परन्तु उसकी मान्यताएं एक संकुचित सीमा में बद्ध हो गई। उसने अपने सिद्धान्तों के अनुसार यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मानव जन्म से ही यौन-संबधी आकर्षण से युक्त होता है। उसके अनुसार बेटा प्रारम्भ से ही अपनी माँ के प्रति और बेटी अपने पिता के प्रति एक आकर्षण का अनुभव करती है। इस आकर्षण के फलस्वरूप ही वे क्रमशः पिता और माँ को अपने आकर्षण में बाधक मानते हैं और उनके अवचेतन मन में अपने माँ-बाप के प्रति ईर्ष्या और घृणा का भाव दबा रहता है। यह भाव कभी किसी न किसी रूप में व्यक्ति के चेतन-मन पर हावी हो जाता है और वह बुरे कार्य करता है। फ्रायड के सिद्धान्तानुसार आधुनिक युग में मानव जो उन्नति कर रहा है इन सबके मूल में केवल उसकी 'सेक्स' सम्बन्धी भावना निहित है।

परन्तु जोशी जी फायड के इस सीमित सिद्धान्त को नहीं मानते। उनका दृष्टिकोण व्यापक है। वे अवचेतन मन की सत्ता को वास्तव में मानव तथा समाज की उन्नति के लिए अत्यंत आवश्यक मानते हैं।

उनके अनुसार आधुनिक—युग में मानव भी चेतन—सत्ता को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाता है और अवचेतन मन के महत्व को कोई नहीं समझ पाता। यदि किसी व्यक्ति ने बाह्य—जीवन के स्तर को उच्च बना लिया तो उसका आदर होता है पर उसके अवचेतन में छिपी हुई कुटिलताओं, दमित वासनाओं को नहीं परखा जाता। आज-कल के इस युग में अन्तर में छिपे द्वन्द और हाहाकार से कोई भी परिचित नहीं। वे सशक्त शब्दों में अपने मत को प्रकट करते हुए कहते हैं :— "केवल बाह्य जीवन की सामाजिक—आर्थिक—व्यवस्था और उसके परिणाम स्वरूप वर्ग-संघर्ष को ही बाहरी और भीतरी जीवन की एकमात्र परिचालिका शक्ति मानना और केवल उसी से सम्बन्ध रखने वाले तत्वों की खोज के पथ को 'प्रगति-शीलता' का एक मात्र पथ बनाना घोर भ्रम-मूलक है। वर्तमान महायुद्ध ने हमें पहले से भी अधिक निश्चित् रूप से यह जता दिया है कि बाह्य—जगत् की समस्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों और व्याख्याओं का संचालन मूल रूप से सामूहिक मानव की सामूहिक अज्ञात—चेतना के भीतर दबे पड़े असंख्य संस्कारों के ही प्रस्फुटन और विस्फोट द्वारा होता है।"

फ्रायड ने यौनाकर्षण तथा वासना के जिस सिद्धान्त से व्यक्तियों को भयभीत कर दिया था उससे जोशी जी प्रभावित नहीं हैं। वास्तव में जोशी जी की मान्यताओं की जड़ें भारतीय संस्कृति में हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार काम—वासना को पाप नहीं माना गया है वरन् उसके स्वस्थ उपभोग के लिए व्यक्तियों को प्रेरित किया गया है। यही कारण है कि जोशी जी भी वासना को पाप नहीं मानते हैं। वे अपने मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं, "हमारे यहां वैदिक-काल से लेकर अनेक परवर्ती युगों तक 'सेक्स' को आदिम शक्ति और सहज प्रकृति के रूप में माना गया है। उससे बिदकने या कतराने का कोई कारण हमारे कवियों या चिन्तकों ने नहीं पाया।"

वे 'सेक्स' को उस घृणित रूप में नहीं देखते हैं जिस रूप में फ्रायड ने उसे देखा है। जोशी जी का कहना है कि 'सेक्स' के प्रति फ्रायड का यह दृष्टिकोण ईसाइयों के 'ओरिजिनल सिन' वाली मान्यता के कारण है—क्यों कि इसी (ओरिजिनल सिन) के कारण 'एडम' और 'ईव' "ईडन उपवन" से निकाले गये थे। उनके विचार में वह (सेक्स) एक स्वाभाविक तथा प्राकृतिक शक्ति है जिसको नियंत्रित करके कल्याण

कारी तथा मांगलिक कार्यों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। उनका कथन है, "अर्थात् 'सेक्स' संबंधी मूल प्रवृत्ति के भीतर एक ऐसा स्वर्गिक और मांगलिक तत्त्व वर्तमान है जो, यदि पकड़ में आ जाय, तो मानव की उदात्त वृतियों को सत्यं, शिवं और सुन्दरं के ऊंचे स्तरों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकता है।"

वास्तव में यदि देखा जाए तो यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि जोशी जी फ्रायड से उतने प्रभावित नहीं हैं जितना कि वे उसके शिष्यों युंग और एडलर से प्रभावित हैं। वे युंग की सामूहिक अव-चेतना और एडलर द्वारा प्रतिपादित हीनता की ग्रंथि के सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित हैं। इस संबध में उन्होंने मानो फ्रायड को चुनौती देते हुए कहा है, "अन्त में तंग आकर मैंने तुमसे बिलगे हुए तुम्हारे दो शिष्यों—एडलर और युंग—द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उनमें मुझे काफी संगति दिखाई दीया और मानवीय अन्तर्मन की रूप-रेखा के संबंध में एक सीमित किन्तु 'यथार्थ दृष्टि का परिचय मिला। एडलर ने 'इनफीरियॉरिटी काम्पलेक्स' (हीनता की ग्रन्थि) और युंग ने सामूहिक अवचेतना और आदिम बिम्बों (आर्केटाइप्स) को अपने अध्ययन का आधार बनाकर जिन मनोवैज्ञानिक तत्वों की खोज की वे मेरे लिए किसी हद तक पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुए। युंग ने सामूहिक अवचेतना की व्यापकता और गहराई पर जो अन्तर्प्रकाश डाला है उसने मुझे एक नई और महत्व-पूर्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टि दी।"

जोशी जी मानव के अहंभाव की एकान्तिकता को समाज के लिए घातक मानते हैं। उन्होंने कहा है :—"आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों-ज्यों बढ़ती चली जा रही है त्यों-त्यों उसका अहंभाव तीव्र-से-तीव्रतर व्यापक-से-व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तृप्त न होने वाले अहंभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक असफलता मिलती है तो वह बौखला उठता है और बौखलाहट की प्रतिक्रया के फलस्वरूप वह आत्म-विनाश के पहले अपने आस-पास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है।"

यदि मनुष्य का अहंभाव एकान्तिकता को छोड़कर व्यापक रूप में विकसित हो तो उससे समाज का, देश का कल्याण होना अवश्यम्भावी

है। परन्तु आधुनिक युग में अहंभाव का विकास इसके विपरीत रूप में हो रहा है। जहाँ किसी ने बौद्धिक उन्नति की, उसका अहंभाव उसको आस-पास के दूसरे व्यक्तयों से मिलने नहीं देता। वह अपने ही में लीन हो जाता है। दूसरों का बड़प्पन वह किसी भी प्रकार से सहन नहीं कर सकता। वह किसी दूसरे व्यक्ति की कला एवं प्रतिभा को समझने के लिए एक संकुचित विचारधारा को काम में लाता है। इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों में प्रमुख रूप से मनुष्य के अहंभाव की इसी एकान्तिकता का वर्णन किया है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'सन्यासी' का नायक नन्दकिशोर इसी प्रकार की वृत्ति वाला व्यक्ति है। वह परम् अहंवादी व्यक्ति है जो कि केवल अपने अहं की तुष्टि के लिए ही कार्य करता है। उसका यह रूप सर्वप्रथम तब प्रकट होता है जबकि जयन्ती अपने भाई बिरजू से नन्द-किशोर का दिया हुआ नोट लौटाने को कहती है। नन्दकिशोर के अहं को इस आचरण से ठेस पहुंचती है और वह उस नोट के टुकडे-टुकडे करके हवा में उड़ा देता है। वह शान्ति से प्रेम करता है तथा उससे शरीरिक सम्बन्ध स्थापित करके भी संतुष्ट नहीं होता है।

वह जयन्ती के पवित्र तथा दृढ़ आचरण से ईर्ष्या करता है! तथा उस के नारीत्व से खिलवाड़ करना चाहता है क्यों कि इससे उसके अहंभाव की तुष्टि होती है। वह स्वयं कहता है:— "विवाह! जयन्ती के साथ विवाह! इसका अर्थ यह है कि यही जयन्ती जो इस समय मेरे इतने निकट होने पर भी मुझसे इतनी दूर है, मेरी दासी बन कर रहेगी और अपने अज्ञात गर्व और अव्यक्त घृणा के कुचल जाने पर आँधी के वेग से विच्छिन्न लता की तरह एक मात्र मेरे चरणों का आश्रय पाकर विवश होकर उनसे लिपटी रहेगी! इस भावना में कितना सुख है! मैं अवश्य उससे विवाह करूँगा। एक बार इस बेत की तरह नमनीय तथापि संयम की दृढ़ता से कुटिल-कठोर लता को जीभर कर तोड़-मरोड़ कर सामाजिक बन्धन की मज़बूत डोर से बांध दूंगा, ताकि वह फिर कभी बेत की तरह छिटक कर अपना सिर ऊँचा न करने पावे। मैं विवाह करूँगा।"

जोशी जी ने पुरुष के इस अहंभाव का स्पष्ठीकरण अपनी एक नारी पात्र के द्वारा करवाया है। जयन्ती एक दिन स्पष्ठ रूप से नन्दकिशोर के सामने उसके अहंभाव का पर्दाफाश करती है! वह नन्दकिशोर से कहती है! "...... .... आप बड़े अहंकारी हैं। आपका अहंभाव हद दर्जे तक आगे बढ़ा हुआ है यह एक दोष आप में ऐसा ज़बर्दस्त है, जो कभी-कभी आपके सब

गुणों को ढक देता है। केवल यही नहीं; इसके कारण आप के जीवन में अकसर अशान्ति और बेचैनी छाई रहती होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

प्राचीन काल में नारी सदैव ही पुरुष के प्रत्येक अवगुण को चुपचाप सहन करती थी, परन्तु आधुनिक युग की शिक्षिता नारी पुरुष के अहंभाव या किसी दोष को चुपचाप सहन करने के पक्ष में नहीं है। उसकी भी अपनी एक स्वतंत्र सत्ता है। जयन्ती का कथन है :— "इस अहंभाव की प्राप्ति के लिए आप चाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो वह पूर्ण रूप से आपकी होकर रहे, उसका कुछ भी स्वतंत्र रूप से अपना कहने को न रहे, उसका शरीर, उसका मन, उसकी प्रत्येक वासना, प्रत्येक कामना, आपकी इच्छा की बलि हो जाय, उसके भीतर छिपी हुई कोई भी गुप्त-से-गुप्त प्रवृत्ति उसकी अपनी होकर न रहे, वह सब कुछ बिना किसी असमन्जस के आपके पैरों तले समर्पित कर दे। सीता के युग में, पौराणिक काल में, यह प्रकृति-विरुद्ध बात भले ही संभव रही हो, पर किसी भी वास्तविक युग में यह संभव नहीं हो सकती।"

नारी के माध्यम से पुरुष के अहंभाव की एकान्तिकता पर कितना निष्ठुर प्रहार किया गया है। उनके एक अन्य उपन्यास 'प्रेत और छाया में भी इस अहंभाव का विश्लेषण मिलता है। जोशी जी का स्वयं का कथन है, "व्यक्ति का मन और उसका अहं जब तक सामाजिक मन और अहं से सुनियोजित नहीं हो जाता, तब तक न वह अपना कल्याण कर पाता है और न समाज का। व्यक्ति के अहं की एकांगी विकास मूलक-साधना केवल आत्मघाती ही नहीं, समाजघाती भी होती है।"

जोशी जी व्यक्ति की वैयक्तिकता को महत्वपूर्ण मानते हैं। परन्तु उनकी वैयक्तिकता में यह विशेषता है कि उनके पात्र व्यक्तिवादी होते हुए भी समाज कल्याण और देश-हित में रत रहते हैं। वैयक्तिक कुंठाओं को वे आधुनिक सभ्यता की देन मानते हैं। "वैयक्तिक कुंठा मनुष्य की आधुनिक सभ्यता की देन है। आज के सभ्य जीवन में जो ऊपरी दिखावा, जो बनावटीपन आ गया है, उसने जीवन के सहज, सरल और स्वस्थ प्रवाह को चारों ओर से रूंध दिया है। इस अवरोध का फल यह देखने में आता है कि मनुष्य को पग-पग पर अपने भीतर के वास्तविक रूप को छिपाना पड़ता है और समाज के बाहरी रूप के साथ अपना सामन्जस्य करने के लिए नये-नये मुखड़े पहनने पड़ते हैं, जिनमें से एक भी उसका अपना नहीं होता। अपने को सामाजिक दबाव के कारण इस प्रकार निरंतर छिपाते रहने, अपने भीतर की वास्तविक प्रवृत्तियों को बराबर दबाते रहने का फल यह होता है कि व्यक्ति के भीतर के द्वन्द बढ़ते चले जाते

हैं। इस प्रकार का कुंठित व्यक्ति बाहरी परिस्थितियों की विषमता से लड़कर, उनपर विजय प्राप्त करके, व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन की गति को आगे बढ़ाते चले जाने में सहायक होने के बजाय अपनी ही दमित प्रवृत्तियों से लड़ने में अपनी सारी शक्ति समाप्त कर देता है, और संघर्ष में उलझ कर स्वयं ही क्षत-विक्षत होता चला जाता है।"

उनका विचार है कि व्यक्ति के वैयक्तिक स्वरूप को पहचान कर उसको अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता दी जाए। उनका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण समाज-सापेक्ष है। वास्तव में वे वैयक्तिक चेतना को समाज की स्वस्थ और सबल उन्नति के लिए परम आवश्यक मानते हैं। उनके उपन्यासों के पात्र व्यक्तिवादी तो हैं अवश्य परन्तु अन्त तक आते–आते उनका दृष्टिकोण व्यक्ति-वादिता से बदल कर सामाजिकता के व्यापक रूप में परिवर्तित हो जाता है। वे सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हैं। जिन आदर्शों की नींव समाज में दृढ़ हो चुकी है उनसे वे पात्र मुँह न मोड़कर आनन्द-पूर्वक उनकी सत्ता को स्वीकार करते हैं।

वे नवचेतन के एक ऐसे नवीन युग की परिकल्पना करते हैं जिसमें कि समाज-सापेक्ष व्यक्तिगत मान्यताओं का मान हो। समाज की इस सापेक्षता का दबाव व्यक्ति के वैयक्तिक विकास पर न होगा।

उनके उपन्यासों में भी उनके इस दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। नन्द-किशोर, पारसनाथ, गिरिजा, रंजन इत्यादि ऐसे ही पात्र हैं जो कि प्रारम्भ में घोर व्यक्तिवादी हैं परन्तु अन्त तक आते-आते उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है। 'प्रेत और छाया' का नायक पारसनाथ जो कि जीवन भर अच्छृंखल और स्वेच्छाचारी रहा अन्त में हीरा के साथ विवाह करके एक सुनिश्चित् सामाजिक मर्यादा का पालन करता है। 'सुबह के भूले' की नायिका गिरिजा भी अन्त में अपनी सरल स्वभाव वाली माँ और बचपन के साथी किशन की शरण में आती है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि जोशी जी का जीवन के प्रति जो एक विशिष्ट दृष्टिकोण है उसमें मानव के अवचेतन मन, उसकी वैयक्तिकता, और उसके अहंभाव के मनोविश्लेषण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका यह जीवन-दृष्टिकोण लगभग उनके सभी उपन्यासों में परिलक्षित होता है।

कश्मीरी लोक-गीत

बन्सी लाल पण्डित एम० ए० (अनुसंधित्सु)

गीत स्वानुभूतिपरक काव्य का अंग है जिसमें गेय तत्त्व प्रधान होता है और कवि अपने हृदय के हर्ष-विषाद को व्यक्त करता है। महादेवी वर्मा के शब्दों में 'गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय होसके''। गीत के दो भेद होते हैं—लोक-गीत और कला-गीत। यद्यपि गीत के यह दोनों भेद गेयता आदि की दृष्टि से साम्य रखते हैं फिर भी दोनों की विभाजक रेखाएं पूर्णतः स्पष्ट हैं। लोक गीत शुद्ध गेयात्मक होते हैं उनकी रचना गाने के लिए ही होती है जबकि कला गीत पहले लिखे जाते हैं बाद में उन्हें संगीत बद्ध किया जाता है। लोक गीत सहजता के गुण को अधिक लिए हुए होते हैं उनकी रचना खेतों खलिहानों या झूला झूलते समय होती है परन्तु कला गीतों का सृजन स्थान प्रायः कलाकार का कक्ष होता है। लोक-गीत मिलकर गाये जाते हैं अतः उनका आधार सामूहिक होता है और भाव भी समष्टिगत होते हैं जबकि कला गीतों में व्यक्तित्व की प्रधानता होती है। लोक-गीतों का रचयिता बहुधा अज्ञात ही रहता है जबकि कला गीतों का रचयिताज्ञात और परिचित होता है।

लोक गीतों का स्वतः स्फूर्त साहित्य बे जोड़ है। इनमें वह माधुरी, मिठास, वेग और अनुभूति मिलती है जो नियमों और बन्धनों की दासता स्वीकार करने वाले साहित्य में नहीं पाई जाती। लोकगीतों का किसी भी देश के समाज साहित्य और संस्कृति से अविच्छिन्न सम्बन्ध रहता है। लोक गीत कभी नया-पुराना नहीं होता। इन गीतों का साहित्य अमर और अनादि है। लोक गीतों की महत्ता स्वीकार करते हुए पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदीने इन्हें आर्येतर सभ्यता के वेद (श्रुति) कहा है, गाँधी जी ने 'समूची संस्कृति के पहेरदार'। पैरी के कथनानुसार लोक गीत आदि मानवता का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में पनपते हुए मानव में जब थोड़ी बहुत बुद्धि आई और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो व्यक्त करने के लिये उसने विकृत आलाप लेना प्रारम्भ किया, यही आदि संगीत पैरी के शब्दों में लोक गीत है। १. इसी प्रकार राष्ट्रपिता गांधी जी का कथन

---

1. This spontaneous music has been called folk—song
श्याम परमार— भारतीय लोक साहित्य पृ० ५२

है कि लोक गीत जनता की भाषा है। वास्तव में गांधी जी का यह कथन सत्य भी है, लोक गीतों में किसी देश का वास्तविक स्वरूप सामने आता है और उस देश के पहाड़ एवं नादियां गाते हुए से दिखाई देते हैं।

लोक-गीतों के इस महत्त्व को देख कर यदि कश्मीरी लोक गीतों का अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि किसी भी देश के लोक गीतों से इनका महत्व कम नहीं है।

देवेन्द्र सत्यार्थी जी ने कश्मीरी लोक-गीतों की प्रमुख शाखाएं इस प्रकार निर्दिष्ट की हैं :—

१. बाँड-जशन। ये वे गीत हैं जिन्हें बाँड (ग्रामीण-नट) अपने गीत-नाटकों में गाते हैं।
२. बच-नगमा (जश्न)। इन्हें 'बच-नगमा' नर्तक अपनी नृत्य-प्रदर्शिनियों में गाते हैं।
३. सोंत-ग्यवुन। 'सोंत' का शब्दार्थ है वसन्त। ये वे गीत हैं जो वसन्त के स्वागत में गाए जाते हैं।
४. कथ-ग्यवुन (कथा-गीत)। 'कथ' या बात कथा कहानी के अर्थों में आते हैं। इन गीतों में किसी नायक या नायिका का सजीव चित्र रहता है।
५. हाँजियों के गीत।
६. लोल ग्यवुन। 'लोल' का शब्दार्थ है प्रेम इन गीतों की आधारशिला प्रेम-मय अनुभूतियों पर ही स्थित रहती है।
७. वनवुन। विवाह - गीत।
८ ललनावुन। लोरियाँ।
९. गिंदुन-ग्यवुन। बच्चों के खेल-गीत।
१०. यज्ञोपवीत ग्यवुन। यज्ञोपवीत संस्कार के दिनों में हिन्दू घरों में गाए जाने वाले गीत।
११. रूफ। रूफ-नृत्य के साथ गाए जाने वाले गीत।

अत्युक्ति न होगी यदि हम कश्मीरी लोक गीतों को ध्यान में रखकर यह शाखाएं भी करदें जैसे :—

१. नेन्दह बाथ। खेतों की नलाई करते समय गाए जाने वाले गीत।
२. यन्द्रह बाथ। चरखा कातते समय गाए जाने वाले गीत।

३. श्रम - परिहरण के गीत।

४. शोक-गीत। मृत्यु के पश्चात् गाए जाने वाले गीत।

उपर्युक्त शाखाओं के आधार पर जब कश्मीरी लोक—गीतों को परखते हैं तो किसी भी क्षेत्र में अपरिमित और अनगिनित गीत मिलते हैं।

जैसे 'जशन' के समय पर ग्रामीण नट, तमाशाइयों को हँसाने के लिएं यह गीत गाते हैं जिस का अर्थ इस प्रकार से है :—

एक नट दूसरे नट को कहता है कि जो भी मैं (पहला नट) कहूँगा, तुम (दूसरा नट) वही बाद में रटते जाना।

पहला नट :— तुम्हारा दिल सूजा है, तुम्हारा सारा पाँव सूज गया है। दूसरा नट भो रटता है। फिर पहला नट गाता है—अरे मेरी माँ तुम्हारा पुत्र मर गया। दूसरा नट भी यही कहता है। किन्तु पहला फिर पूछता है, क्यों मरना चाहते हो। इस प्रकार दर्शक हंस-हंस कर लोट-पोट हो जाते हैं।

'बच-नगमा' गीत को देखिए :—

नायिका नायक के विरह में तप्त है, उस का मन नायक को देखने के लिए लालायित है। उस का अन्तर्तम तड़प उठता है और वह अपनी सखी से प्रेमावेश में कहती है :—

खोंश यिवुन तुन्दह ग्रोन—वेसिये स्योन दिलबर आवनै,
थरह-थरह छेम मरह बो शायद शर म्य जिगरुक द्रावनै,
वांदह कोरमुत याद छुई ना सादह कोताह ज़ानिथास,
अदै अदह कोन थावंयोथ स्योन दिल तंबहलावनै।

अर्थात् "हे सखी, वह अच्छा लगने वाला, सुन्दर और मेरे दिल को मचलवाने वाला प्रिय क्या नहीं आया ?

मुझे थरथराहट लगी है और शायद मैं मर जाऊँगी, पर मेरे दिल का अरमान नहीं निकला।

क्या तुझे मेरे साथ किया हुआ वादा, याद नही है, तू ने मुझे कितना सादा जाना।

तू ने पहले ही फिर मेरे दिल को लुभाने के बगैर ही क्यों न रखा था।

इस प्रकार के बहुत सारे गीत कश्मीरी—लोक गीतों के रूप में उपलब्ध हैं।

'रूफ' गीत को लीजिए। नायिका को नायक के प्रेम ने उन्मत्त बना लिया है। प्रेम की पीर उस के उद्गारों को इस प्रकार जन्म देती है:—

छुम फिराक भावह कस, यारह दाद मारनस,
१. अर्फह छुम आलमस, ईद छम आशक्स,
यारह रूस ईद क्रम, यारह दाद मारनस,
मज़ह छुमा नाबदस—कानुन छुम बाज़रस,
हारी रूस मोल कस—यारह दाद मारनस।

अर्थात् मेरे दिल में कुढ़न है, मैं किस से कहूँ।
मुझे तो प्रीतम के दर्द ने मारा।
सारे जहाँ का आज 'अर्फाह' है—और मेरे आशिक की ईद है।
पर प्रीतम के बिना कैसी ईद—मुझे प्रीतम के दर्द ने मारा।
नबात मीठा है और वह बाजार में बिकता है।
मोल के बिना क्या बिकता है—मुझे तो प्रीतम के दर्द ने मारा।
लोक-कवि की प्रतिभा देखते बनती है।

इसी प्रकार कश्मीरी लोक गीतों में वसन्त के आगमन पर गाए जाने वाले गीत भी मिलते हैं। वसन्त आगया है और इसी समय एक भाई अपनी बहिन के घर मिलने जाता है। बहिन के लिए कितना सुअवसर है! वह गा उठती है, जिस का अर्थ इस प्रकार से है:—

नया साल है और वसन्त आ गया,
सास ने पूछा, "यह कौन आ गया?"
"हे सास! यह मेरा भाई आ गया,
हाथी पर चढ़ के, आंगन में आया,
आँगन में छत्र की छाया पड़ी,
उस छत्र के नीचे मैं ने ढ़ाई मोती के दाने उठाए।"

अनुवाद में वह सरसता नहीं रह पाती है जो मौलिक रूप में होती है किन्तु फिर भी पाठक लोक-कवि की सशक्त कल्पना का अनुमान लगा सकता है

१. ईद से पहले का दिन।

यद्यपि अंतिम पंक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं है किन्तु ध्यान देने से यह अस्पष्टता दूर हो जाती है।

कथा - गीत को यदि लिया जाए तो कश्मीरी लोक कथा—गीत बहुत मिलते हैं। 'नयि हंज़ कथ' इस प्रकार के कथा—गीत के तौर पर ली जा सकती है। इस में मानो 'मुरली' मनुष्य शरीर धारण किए हो और अपनी राम कहानी उस समय से आरम्भ करती है जब वह पेड़ के रूप में मस्त जंगल में पड़ी रहती है। फिर किस प्रकार उस को काटा जाता है और कौन-कौन सी यातनाएं सहते-सहते वह अंत में मुरली का रूप धारण करती है।

इसी प्रकार विवाह के शुभ अवसर पर गाए जाने वाले असंख्य गीत उपलब्ध हैं। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के रीति-रिवाज भिन्न होने के कारण दोनों के विवाह - गीत वहिरंग भिन्नता लिए हुए हैं, फिर भी उन की अन्तरात्मा एक है। हिन्दुओं के विवाह-गीत इतने असंख्य हैं कि स्थानाभाव के कारण यहां केवल कुछ का ही उल्लेख किया जा सकता है।

विवाह की तैयारी में पहले सारे मकान को लीपा जाता है :—

शोकलम करिथ बन वुन ह्योतुमय,
शुब फल दितिमय माजि बवाने।
गर नाव नस ज़ंगि कुस ओयेय,
मंगला दीवी त नन्दकीश्वर।

अर्थात् हम ने 'शुक्ल' करके गान आरम्भ किया।
माता भवानी ने अच्छे फल दिए।
तुम्हें घर लीपने के समय किस की ज़ंग आई।
मंगला देवी जी और नन्दकेश्वर आए थे।

इस प्रकार से हिन्दू विवाह में हर कदम पर गीत हैं। मुसलमान लोक-कवि विवाह के सम्बन्ध में मूक नहीं है। उन के यहाँ भी हर क्रिया के साथ गीत मिलते हैं :—

जब दुल्हा घर से निकलकर दुल्हन को लाने जाता है तो स्त्रियाँ इस प्रकार का गीत गाती हैं जिस का आशय यह है :—

---

१. जब कोई किसी कार्य के लिए निकलता है तो जो पहला मनुष्य वहां से आते हुए मिलता है, कश्मीरी शकुन 'ज़ंग' कहता है।

"जब तुम यहां से जाओगे, वहां दाएँ ओर एक खिडकी है उसी में वह मैना जैसी सुन्दर दुल्हन विराजमान है ।"

लोक कवि की विचार-शीलता का एक और गीत देखिए। कहार लोग दुल्हन को डोली में उठाकर, दुल्हा के घर की ओर वापिस चलते हैं। स्त्रियाँ पीछे-पीछे चलकर गाती हैं और कहारों को सतर्कता से चलने का संकेत करती हैं, क्योंकि उन के कन्धों पर कोई दूसरी चीज़ न होकर, मानो दूध का प्याला है जो ज़रा भी ठोकर खाकर नष्ट हो सकता है। लोक-कवि ने यहां नवविवाहिता वधू की तुलना दूध के प्याले से करके सुन्दरता को किस प्रकार जन्म दिया है, वह द्रष्टव्य है :—

"कहरयो नज़र तराव बानह हाल बालस,
यिना दोदह प्यालस ग्राय लगियो।

अर्थात् अरे कहारो आगे पीर पंचाल की ओर नज़र दौडाओ,
ऐसा न हो कि कहीं दूध के प्याले को झटका लगे !

थोडी सी चढ़ाई का पहाड मानना और नव विवहिताओं को दूध का प्याला कहना—लोक कवि की अपनी विशेषता है।

जहां प्रेम - गीतों और विवाह गीतों में उल्लास है, वहां शोक गीतों में विषाद है।

किसी स्त्री का जवान पति यदि मर जाता है तो वह अपने भाग्य को कोसती हुई इस प्रकार विलाप करती है। 'हे प्रीतम तुम स्वयं चले गए मगर मुझे ताने सुनने के लिए पीछे छोड़ा। हे प्रीतम ! मैं किस की होकर ज़िन्दा रहूँगी'। इन दुखभरे गीतों को सुनने की किस में शक्ति है ? इसी प्रकार जब किसी बालक का पिता मर जाता है तो वह रोता हुआ अपने मरे हुए पिता को सम्बोधित करके गाता है कि हे पिता! अब मुझे राह चलते लोग यतीम के नाम से पुकारेंगे। इस एक शब्द में कितनी तडप है, कितनी कसक है, दर्द की मात्रा कितनी प्रखर है-कौन कह सकता है ?

कश्मीरी लोक गीतों में लोरियाँ हैं, श्रमपरिहरण के गीत हैं, नलाई के गीत हैं, त्योहारों के गीत हैं, ऋतुओं के गीत हैं, वर्षा के गीत हैं, और विरह के

गीत हैं। कहने का आशय यह है कि जीवन के हर पहलू से सम्बन्धित लोक गीत विद्यमान हैं। संसार की किसी भी भाषा के लोक गीतों के साथ यदि कश्मीरी लोक-गीतों की तुलना की जाए तो इन लोक-गीतों का भाव कल्पना एवं वैविध्य आदि किसी भी क्षेत्र में निम्नस्तर का न होगा। वास्तव में कश्मीरी लोक-गीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है तथा अपरिमित मात्रा में लोक-गीत विद्यमान हैं किन्तु इन का संकलन करना कठिन कार्य है।

व्यक्ति और समाज

एक घमण्डी ज़मींदार किसी के यहाँ भी निमंत्रण पर नहीं जाता था। दावत के समय उसका एक चोबदार जमींदार का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक बढ़िया, चिकनी, मोटी काली और मढ़ी हुई लाठी ले जाता था और उसे जमींदार के स्थान पर रख आता था, और दावत समाप्त होने पर उसे खूब पोंछ कर, चिकना कर वापिस ले आता था। लोग मन ही मनकुढ़ते थे—कुछ कह नहीं पाते थे।

ज़मींदार के पुत्र का विवाह हुआ। ५०० लोगों को दावत का निमंत्रण गया। दावत के दिन ज़मींदार के द्वार पर ५००, बढ़िया, चिकनी, मोटी, काली और मढ़ी हुई लाठियाँ रखी थीं और भोजन पर मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं।

उसके बाद ज़मींदार ने किसीं का निमंत्रण नहीं ठुकराया।

(एक पुरानी कहानी)

कश्मीरी भाषा ध्वनि–विचार

डा० प्राणनाथ तृष्ल

कश्मीरी भारत के संविधान में सम्मिलित चौदह क्षेत्रीय भाषाओं में से एक है। यह मुख्यत: कश्मीरी घाटी में ही बोली जाती है। कश्मीरी भाषा क्षेत्र के उत्तर में दारद परिवार की शीणा भाषा का क्षेत्र है एवं दक्षिण में डोगरी, पूर्व में भद्रवाही और पश्चिम में छब्रीली भाषा का।

नीचे जिस भाषा का ध्वनि विचार प्रस्तुत किया जा रहा है उसे हम परिनिष्ठित कश्मीरी भाषा की संज्ञा दे सकते हैं। यह शिक्षित-वर्ग की भाषा पर आधारित है। ध्वनिग्रामीय स्तर पर मुसलमानों एवं हिन्दुओं द्वारा बोली जाने वाली भाषा में कोई अन्तर नहीं। कुछ अन्तर जो कभी-कभी सुनाई पड़ते हैं वे गौण हैं और विद्वताप्रदर्शन मात्र के लिए प्रयुक्त होते हैं; भाषा पर उन का कोई प्रभाव नहीं है।

१. कश्मीरी भाषा में निम्न खंडीय स्वनग्राम [१] हैं :—

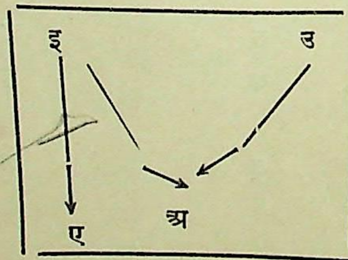
	द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	अग्र वर्त्स्य	पश्च वर्त्स्यं	ताल०य	कंठ्य
स्पर्श						
अघोष						
अल्पप्राण	प	त		च	ट	क
महाप्राण	फ	थ		छ	ठ	ख
घोष						
अल्पप्राण	ब	द		ज	ड	ग
स्पर्श संघर्षी						
अघोष			च़			
महाप्राण			छ़			
घोष						
अल्पप्राण			ज़			

१. खंडीय स्वनग्राम Segmental Phoneme स्वनग्राम को ध्वनिग्राम भी कहा जाता है।

संघर्षी							
अघोष				स	श		
नासिक्य							
घोष		म	न				
पार्श्विक							
घोष			ल				
कंपनयुक्त							
घोष		र					ह
स्वर	अग्र अगोलीकृत			मध्य अगोलीकृत		पश्च अगोलीकृत	
उच्च	इ	ई		उ	ऊ	उ	ऊ
मध्य	ए	ए		अ	आ	ओ	ओ
निम्न				अ	आ		
अर्द्धस्वर	इ या य्			उ		व्	

स्वर स्वनग्राम में विदेशी ध्वनियों के उच्चारण में /ऐ/ /æ:/ भी प्राप्त है। यह स्वनिम प्रायः /आ/ के मुक्त-परिवर्तन के रूप में मिलता है। जैसे /बोठ्—बैठ्/ अंग्रेज़ी bat.

अर्द्ध स्वरों के अतिरिक्त /य/, /व/ और /ये/ केन्द्राभिमुखी Centring संयुक्त स्वर हैं, इन को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :—



/इअ/, /उअ/, /इए/

इन के अतिरिक्त खंडेतर स्वनग्राम निम्न है—

संक्रमण (Juncture) /+/

उदाहरण—

/अन्+अन्/ 'अन्न ला'

/अनन्/ 'लायेंगे-वे'

२. /इ इ ई ए ए/ से पूर्व प्राय: सभी व्यंजन विशेषत: /न ल र/ तालव्यीकृत हो जाते हैं। /इ/ से पूर्व व्यंजन तालव्यीकृत हो जाने से इन में पूर्व-श्रुति (Onglide) भी आ जाता है। जैसे—

/मचि/ 'मिट्टी !' (संबोधन)
/मचि/ 'भूख-को' (स्त्री०, कर्म)

/चानि/ 'आप-की' (एक०, कर्म)
/चानि/ 'आप-की' (बहु०, कम)
/चानी/ 'आप-की-ही'
/चले/ 'भागे' (प्रेरणार्थक)

पश्च वर्त्स्य व्यंजनों में पश्च-श्रुति Off glide अनिवार्य रूप से आ जाती है। सभी व्यंजन विशेषत: /क ख ग/ /व् उ ऊ/ से पूर्व होने पर ओष्ठ्य-कंठीकृत (Labiovelarised) हो जाते हैं, जैसे—

/खवर्/ 'पैर'
/गुर्/ 'घोड़ा'
/सूर्/ 'राख'

सभी अन्त्य महाप्राण व्यंजन तनिक पूर्व-प्राण युक्त होते हैं।
शब्दादि में /ह/ प्राय: [ह ह] आरम्भ में अघोष तदुपरान्त घोष होता है। अन्य अवस्थाओं में पूर्ण घोष।
स्वर और व्यंजन के मध्य में (/म—व/) और स्वर के पश्चात् अन्त्य अवस्था में (/स—#/) /ह/ अत्यन्त अशक्त (Lenis) है, यहाँ तक कि यह इस से पूर्व स्थित स्वर की श्वसित फुसफुसाहट के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जैसे—

/हहार्/ 'साला'
/माहूरा/ 'महाराज' (सम्बोधन)
/तेह्/ 'गर्व'

/ड/ प्राय: अन्त्य स्थिति में या तालव्य व्यंजनों के अतिरिक्त शेष व्यंजनों से पूर्व स्थिति में अशक्त एवं उत्क्षिप्त सा है, (परन्तु हिन्दी /ड़/ की भाँति नहीं), जैसे—

/कड्/ 'निकाल' (आज्ञार्थक)
/ख़्वड्नी/ 'पहले'

यदि नासिक्य व्यंजन /ड/ से पूर्व स्थित हो तो उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता, जैसे—

/म्वंड्/ 'विधवा'

कंपनयुक्त /र/ अतिन्यून कंपनयुक्त है। इसी कारण कभी-कभी /र/ और /ड/ में अर्थभेदकता नहीं रह पाती, जैसे—

/ होर् /: / होड़् / 'वहाँ'

/ कूर् /: / कूड़् / 'लड़की'

/त थ द/ दन्त्य हैं पर /न ल र/ वर्त्स्य हैं। स्वर के समीप होने पर अर्द्धस्वर /इ/ की प्रवृत्ति व्यंजन-सी हो जाती है, परन्तु किसी अन्य स्थिति में यह अतिह्रस्व स्वर की भाँति है, जिसकी स्वनग्रामीय सत्ता आन्तरिक रूप में मान्य नहीं हो सकती। जैसे -

/ माइ / या / माय् / 'प्रेम, लगाव'

परन्तु

/ बुडिबब् / 'दादा, नाना'

/ खासि / 'प्याले'

अर्द्धस्वर /उ/ १. प्रायः स्वरेतर स्वनिमों के साथ ही प्राप्त है। ऐसी स्थिति में यह अतिह्रस्व स्वर है। जब इसके पूर्व में /म न ल र ह / हों तो यह पूर्व स्थित व्यंजन की / उ /—जैसी प्रति ध्वनि के समान लगता है। जैसे—

/गुरु/ 'घोड़ी' (स्त्री० एक०)

/मालु/ 'माला' (स्त्री० एक०)

अर्द्धस्वर / व् / केवल स्वरों के साथ मिलता है और प्रायः अनान्तरिक गोलीकृत स्वर है। पूर्व, मध्य या पश्च स्थितियों में यह दन्त्योष्ठ्य और अत्यशक्त घर्षी है। जैसे—

/ काव् / 'कौआ'

/ नेचुव् / 'पुत्र'

परन्तु

/ म्यवु / 'फल'

/ व्योठ् / 'मोटा'

/ पेकिव् / 'चलिए' (आदर सूचक, प्रेरणार्थक)

---

१. इस का महत्त्व पदरूप (Morpheme) के रूप में अधिक है।

पूर्व में या मध्य में दीर्घ स्वर ध्वन्यात्मक दृष्टि से ह्रस्व स्वर हैं जो मध्य केन्द्रीय स्वर की पश्चश्रुति के कारण दीर्घीकृत हो जाता है। अन्त्य-स्थिति में दीर्घ स्वर मूल स्वर (Monophthong) है। उच्च स्वर अन्त्य स्थिति में कुछ निम्न हो जाते हैं। मध्य स्वर ध्वन्यात्मक दृष्टि से उच्च मध्य हैं। /ऐ/ (/æ:/) निम्न मध्य है। निम्न स्वर /अ/ के पूर्व में यदि /वइ वव/ हों तो कुछ उच्चीकृत हो जाता है।

अनग्र अगोलीकृत स्वर /उ ऊ अ आ/ मध्य और पश्च के बीच हैं। /अ आ/ प्रायः मध्य स्वर हैं।

अग्र स्वरेतर सभी स्वर /इ/ के पूर्व स्थित होने पर या /इ वइ वइ/ के बाद में होने पर अग्र हो जाते हैं। परन्तु /अ/ /व/ के पूर्व होने पर पश्च गोलीकृत हो जाता है। उपर्युक्त के उदाहरण देखिए :—

/ यार् / 'मित्र'

/ द्यार् / 'पैसे'

/ गुरुय् / 'घोड़ी-ही'

/ शुरि / 'बच्चें' (बहु०)

/वयं/ या ध्वन्यात्मक [वय ऐ,] एवं /वव/ या ध्वन्यात्मक [वव] के उदाहरण देखिए :—

/ ख्यल् / 'पद्म-पत्र'

/ र्यल् / 'टुकड़ा'

/ कुवल् / 'नदी'

/ द्वद् / 'दूध'

नासिक्य व्यंजन के पश्च में स्थित होने पर सभी स्वर अर्द्धानुनासिक हो जाते हैं।

अनुनासिक स्वर एवं उसके बाद स्थित व्यंजन के बीच तदनुरूप अतिलघु नासिक्य व्यंजन का आगम होता है, यह नासिक्य व्यंजन अत्यधिक लघु होता है, जब पूर्व अनुनासिक स्वर दीर्घ हो। जैसे—

/ अंब् / 'आम'

/ ड़ांब / 'बहाना' (क्रमशः)

नोट :— प्रेस में चन्द्राकार चिह्न के अभाव में अक्षरों के नीचे [—] चिह्न लगाया गया है। पाठक कृपया इसे चन्द्राकार चिह्न ही समझें।

पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–एक परिचय

श्री भूषणलाल कौल

'पौराणिक समुद्र-मंथन के बाद भी भारत में कई समुद्र-मंथन हुए। हमारे युग में, बीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में भी यह कल्प घटित हुआ, जो अनवरत पच्चीस-तीस वर्षों तक चलता रहा। सदियों के दुर्दमनीय दमन से हीन-वीर्य परवशता का विष जब फेनिल आवेश के साथ उमड़ा तो नवीन नीलकंठ का अवतरण हुआ—गांधी के रूप में। इस नील-कंठ के गणों के हिस्से में भी हलाहल की कुछ बूँदें पड़ीं, जिन्हें वे प्रसाद समझ कर पी गए, जिस से भावी पीढ़ियों के लिए सुधा सुरक्षित रह सके। पं० बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' उस दुर्द्धर्ष नीलकंठ के प्रमुख विषपायी गणों में से एक थे'। [१]

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम एवं आधुनिक हिन्दी-साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय नवीन जी की अमूल्य देश-सेवाओं से हम परिचित हो जाते हैं। जितना कार्य उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में किया उस से कहीं अधिक प्रशंसनीय एवं प्रौढ़ काम उन की लेखनी ने साहित्य-क्षेत्र में कर दिखाया।

नवीन जी का जन्म विक्रम सं० १९५४ मार्ग शीर्ष-पूर्णिमा, तदनुसार ८ दिसम्बर १८९७ ई० के दिन मध्य-भारत में शाजापुर के निकट भयाना नामक गाँव में हुआ था। स्वयं नवीन जी ने लिखा था – "मेरा जन्म ग्वालियर राज्य के शुजालपुर नामक परगने के भयाना नामक गाँव में हुआ था" [२] अब यह मध्य-प्रदेश राज्य के अंतर्गत है।[३] आप के पिता पण्डित जमना प्रसाद शर्मा वल्लभ सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायी, पक्के वैष्णव और 'भौजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः' मंत्र के कट्टर उपासक थे [४] यह परिवार अत्यंत गरीब था और

---

१ 'पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (लेख) डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २० मई १९६२, पृ० ८

२. 'मेरे जीवन की कहानी' 'नवीन' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३ जुलाई १९६०, पृ० ५

३. 'नवीन' व्यक्ति एवं काव्य – डा० लक्ष्मी नारायण दुबे —पृ० ३९

४. 'रेखा चित्र'—श्री बनारसी दास चतुर्वेदी —पृ० १९८

दरिद्रता ने अपना विकराल रूप इसी घर में फैलाया था। स्वयं नवीन जी ने लिखा है—"मेरी माता कहा करती हैं कि गायों के बांधने का एक बाड़ा मेरे ताऊ जी के घर में था। उसी में अपने राम ने जन्म लिया। वहां गायों ने कितने ही बछड़ों को जन्म दिया होगा। मेरी जननी ने उसी गोशाला में मुझे भी जना।' [१]

जिस परिवार में बच्चा एक चम्मच दूध के लिए तड़प तड़प कर सो जाए, जहाँ तन ढाँपने के लिए गज भर कपड़ा प्राप्य न हो, जहाँ पुत्र का जन्म गोशाला में हो, उस परिवार की आर्थिक दशा कितनी दयनीय थी—यह अनुमान लगाना अधिक कठिन न होगा। स्वयं नवीन जी के शब्दों में—"मेरे माता पिता बहुत गरीब थे—निःसाधन, किन्तु भगवद्भक्त ब्राह्मण। अतः जन्म के वक्त सिवा थाली बजने के और कुछ धूम-धाम न हुई। गाँव का सादा जीवन, गरीबी और अर्थाभाव, ये मेरे चिर परिचित मित्र हैं।[२] माँ घन्टों चक्की पीसकर अपने पुत्र के लिए एक प्याली दूध का प्रबन्ध करती थी। कितना परम साहस एवं दृढ़ निश्चय उस माँ में था जिसने अपने पसीने की कमाई से अपने हृदय के टुकड़े को पाला। बच्चे का रोना और तड़पना उससे सहा न जाता था। माँ का असहाय प्यार शक्ति बन हाथों में उभर आता और घन्टों चक्की पीसकर अर्जित पैसों से बालक के लिए दूध जुटाता। [३]

कुछ समय के पश्चात् उन के पिता जी नाथद्वारे में पुरोहित का कार्य-करने के लिए चले गए। माँ के साथ बालक भी वहाँ चला गया और तीन चार वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् जब उनकी माँ ने देखा कि यहाँ बच्चे के लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है तो उसे ले कर शाजापुर आई। शाजापुर से अंग्रेज़ी मिडल पास करने के बाद हाईस्कूल की शिक्षा के लिए बालक बालकृष्ण उज्जैन चला आया और यहाँ पर माधव कालेज नामक शिक्षा संस्था में उसकी शिक्षा होने लगी।[४] सन् १९१७ ई० में इसी कालेज से ऐंट्रेंस की परीक्षा पास की। नवीन जी के स्कूली-जीवन के विषय में श्री प्रभाकर माचवे ने लिखा है— "नवीन जी

---

१. 'मैं इन से मिला' किश्त-२ पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' पृ० ४२
२. 'मेरे जीवन की कहानी' नवीन जी—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३ जुलाई १९६० —पृ० ५
३. 'नवीन' दर्शन—प्रो० केशव देव उपाध्याय —पृ० १
४. 'मेरे जीवन की कहानी' नवीनजी साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नवीन विशेषाङ्क पृ० ५

स्कूली विद्यार्थी के नाते बड़े नटखट, शरारती और मेधावी व्यक्ति थे. ऐसा मुझे पता चला है।"[१]

सन् १९१६ नवीन जी के जीवन में एक महत्वपूर्ण वर्ष था। लखनऊ काँग्रेस में सम्मिलित होने के लिए जब वे लखनऊ गए तो उन का परिचय श्री माखन लाल चतुर्वेदी, गुप्त जी, एवं गणेश शंकर विद्यार्थी से हुआ। स्वयं नवीन जी ने इस के विषय में लिखा है—"१९१६ में. जब मैं दसवें दर्जे में था, एक ऐसा योग आया, जिस के कारण मेरा समूचा जीवन बदल-सा गया।"[२] यहीं पर उन्हें श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का सान्निध्य और स्नेह प्राप्त हो गया था। अतएव, वे मैट्रिक परीक्षोत्तीर्ण कर, जून, १९१७ में कानपुर चले गए। यहाँ पर पढ़ाई-लिखाई तथा अन्य व्यवस्था पूर्ण रूप से विद्यार्थी जी ने की। कानपुर क्राइस्टचर्च कालेज से 'नवीन' जी ने एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। [ ] कानपुर में नवीन जी का सम्पर्क उच्च कोटि के साहित्यकारों एवं राजनीतिज्ञों से रहा। फलस्वरूप देश की विकट परिस्थितियों से वे अधिकाधिक परिचित होने लगे। अंग्रेज़ों की कूट नीति को वे भाँप गए। उन के हृदय-सागर में हलचल उत्पन्न हुई।

इन्हीं दिनों सन् १९२१ में गाँधी जी का सत्याग्रह उग्ररूप धारण कर उठा। इधर सत्याग्रही अपने पथ पर अडिग एवं अपने प्रण पर अटल थे उधर अंग्रेज़ी सरकार उन्हें कारावास में धकेल कर उन के साथ नीचता का व्यवहार कर रही थी। सरकार किसी भी तरह सत्याग्रहियों को दबाना चाहती थी ताकि उसके दुष्कृत्यों पर सदा के लिए पर्दा रहे। विद्यार्थी जी से नवीन जी को राष्ट्रीय प्रेरणा —देश-भक्ति तथा देश-प्रेम की भावना की प्रेरणा तो मिल ही चुकी थी, अतः 'नवीन' जी भी उथल-पुथल मचा देने की अदम्य भावना लेकर समर में कूद पड़े। [४] उन्हों ने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और कालेज की पढ़ाई छोड़ कर कारावास का दण्ड भुगतने लगे। श्री वृन्दावन वर्मा ने लिखा है —"असहयोग आन्दोलन के छिड़ने पर उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। तब से स्वर्ग-यात्रा पर्यन्त उन का जीवन त्याग, तपस्या, साहित्य-सेवा और कला-साधना की बड़ी सुन्दर और चमत्कार पूर्ण गुत्थी बना रहा।" [५]

---

१. 'व्यक्ति और वाङ्मय'—प्रभाकर मानवे—लेख (नवीन) पृ० १११
२. 'नर्मदा'—मासिक पत्रिका—नवीन विशेषाङ्क १९६३ पृ० ५१
३. 'नवीन'—व्यक्ति एवं काव्य—डा० दुबे
४. 'नवीन' और उन का काव्य—जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पृ० ९
५. 'अनेक स्मृतियाँ हैं, लेख श्री वृन्दावनलाल वर्मा नर्मदा 'नवीन विशेषाङ्क १९६३

उन दिनों डेढ़ वर्ष तक वे कारावास में रहे और यही उन के जीवन की सब से बड़ी परीक्षा थी। आगे चलकर कारावास में ही उन्हें अधिकांश रचनाएँ लिखने का अवसर मिला। जेल से बाहर नवीन जी ने अधिक नहीं लिखा। उन की अधिकांश रचनायें कारागर के शून्य कक्ष में ही लिखी गई थीं। [१]

जेल से छूटने के पश्चात् नवीन जी का सम्पर्क अधिकाधिक विद्यार्थी जी से रहा। 'प्रताप' के सहकारी-सम्पादक के पद पर रह कर वर्षों कठिन परिश्रम करके उन्होंने अपना ऐसा स्थान बना लिया कि अमर शहीद श्री विद्यार्थी के निधन के पश्चात् वे ही 'प्रताप' के प्रधान सम्पादक बने [२] सन् १६३१ में जब गणेश जी शहीद हुए तो नवीन जी पर मानो वज्रपात हुआ। उन के राजनीतिक गुरू, देश का प्रसिद्ध पत्रकार, मातृ-भूमि का वीर सपूत, भारत माँ का लाड़ला बेटा हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में हिंसकों द्वारा कानपुर में मारा गया। यह दुर्घटना नवीन जी के लिए असहनीय थी। स्वयं उन्हों ने लिखा है—"मुझे पन्द्रह वर्षों तक श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी के चरणों में बैठने का, उनके नेतृत्व में काम करने का, उन की प्रेरणा से कारागर की ओर प्रेरित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे उन के सदृश दूसरा आदमी आज तक देखने को नहीं मिला। × × × लिखने की ओर मेरी जो रुचि हुई उस का श्रेय भी पूज्य-चरण गणेश जी को ही है। × × × अगर मैं यूँ कहूँ कि उन्होंने मुझे कलम पकड़ कर लिखना सिखलाया तो अत्युक्ति न होगी।"[३]

सन् १६४२ में नवीन जी को अन्तिम बार दो वर्ष के लिए जेल-यात्रा करनी पड़ी। इन्हीं दिनों जेल में उन का सम्पर्क श्रद्धेय पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री सम्पूर्णानन्दजी एवं स्वर्गीय रफी अहमद किदवई जैसे उच्च कोटि के राजनीतिज्ञों एवं विद्वानों से रहा। ऐसे महापुरुषों के साथ रह कर नवीन जी ने कुछ नवीन बातें सीखीं।

यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि 'नवीन' जी का पहला विवाह बहुत पहले युवावस्था में हुआ था। परन्तु थोड़े ही समय के पश्चात् प्लेग की

---

१. 'नवीन' दर्शन—प्रो० केशव देव उपाध्याय पृ० ८

२. 'नर्मदा'—'नवीन विशेषाङ्क' लेख—विलक्षण साधक श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लेखक—गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर—पृ० ६७

३. 'मैं इन से मिला' दूसरी किश्त—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' पृ० ४५-४८

भयंकर चपेट में आकर उन की पत्नी की मृत्यु हुई थी [१] इस के पश्चात् उन के जीवन में कोई और प्रेमप्रसंग आया था जो असफल रहा। [२] स्वतंत्रता के पश्चात् उन्होंने सन् १९४८ में सरला भंघिरमधानी से विवाह किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आप भारतीय संसद के सदस्य रहे। इस के अतिरिक्त अनेक सभाओं एवं कवि-सम्मेलनों का सभापतित्व आपने किया। आप की वृद्धावस्था रुग्णता तथा निराशा में व्यतीत हुई। सन् १९५०-५१ में आप पर एक बार हृदय-रोग का आक्रमण हुआ था। सन् १९५८ में पुनः संसद् के केन्द्रीय भवन में पक्षाघात का द्वितीय आक्रमण हुआ। [३] अन्त में २८ अप्रैल सन् १९६० को माँ भारती का यह अमर पुत्र सदा के लिए हम से छिन गया। डा० हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है–"मरते तो सभी हैं, पर एक मर कर मर जाता है और एक मर कर अमर हो जाता है। भेद है मरने के अन्दाज़ में। २८ अप्रैल को दिल्ली में जि न ने अपना शरीर छोड़ा और कानपुर में जिस की चिता जली, निस्सन्देह वह नर-नाहर मर कर अमर हो गया [४] नवीनजी की मृत्यु से राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में जो रिक्ति हुई है उसे पूरा करना असम्भव है। श्री देवव्रत देव ने अपनी श्रद्धा के पुष्प उन पर इस प्रकार चढाएं हैं:—

अमर हुई ज़िन्दगी तुम्हें दुहरा कर अपने राग में
धन्य हो गई धरती तुम्हें खिलाकर अपने बाग में,
निर्माणों का चिर नवीन नन्दन तुम हम को दे गए,
मिट्टी हुई सुहागिन तुम को भर कर अपनी माँग में। [५]

संक्षिप्त काव्य-परिचय

अब तक नवीन जी का सम्पूर्ण काव्य प्रकाशित हो चुका है। इस में चार स्फुट काव्य-संग्रह, [६] एक प्रबन्ध काव्य, [७] एक खण्ड काव्य, [८] तथा एक

१. नवीन जी के परम मित्र तथा 'विशाल भारत' के सम्पादक पण्डित श्रीराम शर्मा से ६-२-६५ की प्रत्यक्ष भेंट में ज्ञात।
२. 'नवीन' और उन का काव्य—जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव —पृ० ११
३. 'नवीन' व्यक्ति एवं काव्य—डा० दुबे।
४. 'वह एक योद्धा थे' लेख—डा० हरिवंशराय बच्चन—साप्ताहिक हिन्दुस्तान ३. जुलाई १९६०—पृ० १३
५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नवीन विशेषाङ्क —पृ० ६
६. 'कुंकुम' सन् १९३८, 'अपलक' सन् १९५१, 'रश्मिरेखा सन् १९५१, 'क्वासि' सन् १९५२
७ 'उर्म्मिला' सन् १९५८
८. प्राणार्पण' सन् १९६२

विनोबा जी के प्रति [१] लिखी हुई पुस्तक है। 'नवीन' जी की मृत्यु के पश्चात् 'भारतीय ज्ञान पीठ ने 'हम विषपायी जन्म के' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिस में 'नवीन' का सम्पूर्ण अप्रकाशित साहित्य संकलित किया गया है। 'विनोबा-स्तवन' महापुरुष विनोबा की स्तुति स्वरूप उन के यशोगान में लिखी गई है।[२] 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य युगयुग से उपेक्षित ऊर्म्मिला के चरित्र को प्रकट करता है। साथ ही इस में भारतीय संस्कृति के विकास को बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'प्राणार्पण' स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी की पुण्य स्मृति में लिखा हुआ खण्ड-काव्य है जिस में गणेश शंकर विद्यार्थी की हृदय-विदारक मृत्यु का सम्पूर्ण चित्रण मिलता है। आचार्य विनय मोहन शर्मा ने लिखा है— "इस में स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी के शहीद होने की घटना का काव्यात्मक वर्णन है।" [३]

नवीन जी की अनेक स्फुट कविताओं एवं काव्य-संग्रहों में मुख्य रूप से निम्नलिखित दो प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं—(१) देश-प्रेम या राष्ट्रीय भावना (२) शृंगार

राष्ट्रीय रचनाएं

आधुनिक हिन्दी-कविता की एक अत्यन्त प्रबल प्रवृत्ति उन कविताओं में मिलती है जिन में देश भक्ति का उच्चार है। [४] यह तो हम जानते हैं कि स्वयं नवीन जी कांग्रेस के प्रधान स्तम्भ थे और मृत्यु पर्यन्त देश सेवा में व्यस्त थे। अन्य कवियों की अपेक्षा राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण जन-गण की कठिनाइयों को वे समीप से देख सके। देश के विषैले वातावरण ने उन के हृदय पर इतनी गहरी चोट की कि वे सहन न कर सके और उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया। ऐसी दयनीय परिस्थिति का चित्र नवीन जी ने मर्मस्पर्शी शब्दों में यों खींचा है :—

जब हाय ! ठन गया था सहसा भाई भाई में भीषणरव,
जब लोप हुआ था करुणा का, हिंसा की बिजली कड़की थी,
जब नाच उठी थी निर्दयता, जब आग भयानक भड़की थी,
जब लिए पलीता दौड़े थे जन आग लगाने घर घर में। [५]

१. 'विनोबा-स्तवन' सन् १९५४
२. 'नवीन' और उनका काव्य—जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव —पृ० ६५
३. 'प्राणार्पण' श्री विनयमोहन शर्मा—'नर्मदा' नवीन विशेषाङ्क —पृ० ८७
४. 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता'—डा० नगेन्द्र (हिन्दी साहित्य संग्रह—भाग १)
५. 'प्राणार्पण' —पृ० ५

महाजन, चकदार, जागीरदार एवं अंग्रेज़ी राज्य के कर्मचारी भारतीय श्रमिकों का लहू चूसने में कोई कसर उठा नहीं रखते थे श्रमिकों की दशा दयनीय थी :—

जिन के हाथों में हल-बक्खर जिन के दृढ़ हाथों में घन है,
जिन के हाथों में हँसिया हैं वे ही भूखे हैं निर्धन हैं । [१]

नवीन जी बन्दीगृह से छूटे हुए सत्याग्रहियों का स्वागत करते हैं। वास्तव में यह उन के हृदय के निस्वार्थ एवं निश्छल उद्‌गार हैं :—

माँ ने किया पुकार बढ़ा तू चढ़ा हुआ कुरबान ।
हमने देखा तुझे टहलते सिकचों के दरम्यान ।।
हाथों में थी मूँज कभी बैठा चक्की पर गाते ।
कम्बल बिछा ओढ़ कम्बल दिन बिता दिए मदमाते ।।
बहुत दिनों से बिछुड़े प्यारे अन्तर हिय से सटजा ।
आज रिहाई हुई दौड़ आ मोहन गले लिपट जा ।। [२]

सत्याग्रहियों के बन्दी जीवन का बड़ा मार्मिक विवरण अनेक कवियों की रचनाओं में मिलती है। किन्तु 'नवीन' जी ने एक स्थान पर बड़ी सजीवता से इस करुण दृश्य का वर्णन मिया है :—

ताला कुंजी लालटेन जंगला कैदी यह सब हैं ठीक ।
खींच चुकी है नौकर शाही अपने सर्वनाश की लीक ।।
तेरी चक्की के ये गेहूँ पिसते हैं पिस जाने दो ।
चक्की पिसने वालों को मिट्टी में मिल जाने दो ।। [३]

सत्याग्रह-संग्राम शीघ्र सफल होने वाला नहीं था। पग-पग पर विफलताओं का सामना करना पड़ता था। नवीन जी देश-वासियों को उलाहना देकर उन की अज्ञान-निद्रा भंग करना चाहते हैं :—

रग रग में ठण्डा पानी है अरे उष्णता चली गई,
नस नस में टीसें उठती हैं विजय दूर तक टली सही,
× × × ×
आज खड्ग की धार कुण्ठिता, है खाली तूणीर हुआ । [४]

१. 'हम विष-पायी जन्म के'— कस्त्वं ? कोऽहं ? पृ० १५५
२. 'कैदी का स्वागत' नामक कविता से उद्‌धृत
३. 'कुंकुम'— पृ० २
४. 'हम विष पायी जन्म के'—'पराजय गीत'— पृ० ४२४

इस प्रकार राष्ट्रीय काव्य के कुछ सुन्दर उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि नवीन जी एक सच्चे देश भक्त थे। देश की पीड़ा उन की अपनी पीड़ा थी मानो उन के हृदय पर एक फोड़ा था जिस से छुटकारा पाने के लिए वे सदा तिलमिलाते रहे।

क्रान्तिकारी कविताओं द्वारा नवीन जी ओजस्वी वाणी में विद्रोह एवं युग-परिवर्तन के लिए देश वासियों को ललकार रहे थे। देश की दयनीय दशा को मिटाए बिना स्थायी शान्ति असम्भव थी। कवि नवीन के जीवन में विप्लव साकार होकर हुंकार भर रहा था।[१] कवि क्रान्ति के साथ साथ नाश का स्वागत करते हैं क्योंकि उस नाश में नव निर्माण के बीज छिपे हुए थे :—

कवि कुछ ऐसी तान सुनादे,
जिससे उथल पुथल मच जाए।
एकहिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाए, त्राहि त्राहि रवनभ में छाए। [२]

सजीव एवं सुरुचिपूर्ण वर्णन करके नवीन जी ने अपना राष्ट्रीय-साहित्य अमर बना दिया। मातृभूमि के लिए सब कुछ न्यौछावर करता हुआ स्वतंत्रता संग्राम का यह वीर सैनिक अपनी अमर निधि छोड़ कर हम से बिछुड़ गया। डा० नगेन्द्र लिखते हैं—"नवीन जी स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं, उन का व्यक्तित्व निर्भीक शौर्य का प्रतीक है। उन की वाणी तेज के स्फुलिंग उगलती है। × × × देश का युवक-समाज इसको सुन कर हथेली पर प्राण ले घर से निकल पड़ा था"। [३]

प्रेम-काव्य

प्रेम जगती का एक चिरन्तन सत्य है। नवीन जी के सम्पूर्ण काव्य में, प्रेम-काव्य अपना अद्वितीय स्थान रखता है।[४] उन्होंने प्रेम के विभिन्न पक्षों का सूक्ष्म-परिवेक्षण किया। छायावादी युग से प्रभावित 'नवीन' नायक एवं नायिका

---

१. 'नवीन' दर्शन—प्रो० केशव देव उपाध्याय — पृ० २५
२. 'कुंकुम — पृ० ११
३. 'राष्ट्रीय—सांस्कृतिक काव्य'—डा० नगेन्द्र—
'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ— पृ० २४
४. 'नवीन' व्यक्ति एवं काव्य—डा० दुबे — पृ० २५६

की विभिन्न प्रेम-क्रीडाओं का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से करते हैं। वे स्त्री को जीवन-संगिनी मान कर उस में वासना से अधिक पवित्रता दिखाते हैं। संयोग एवं वियोग के बड़े ही मार्मिक चित्र उन्होंने खींचे हैं। प्रियतम के दर्शन से तो नायिका के शरीर में प्राणों का संचार हुआ :—

आज हुलसे प्राण, पीतम, आज हुलसे प्राण,
ऐ निठुर, तुम ने दिया यह नेह का वरदान।
हुलसे आज आकुल प्राण। [१]

प्रेमिका यह जानती है कि उस के कारण नायक अनेक कष्ट सहता है। उसके साथ साथ प्यार का नाता जोड़ कर नायक ने अपने लिए विपदाओं को आमंत्रण दिया :—

मेरे कारण, प्रियतम, तुम ने कौन व्यथा है, जो न सही है ?
ऐसी कौन वेदना है जो हठकर तुम से दूर रही है ?
दे कर मुझे नेह निज तुमने विपदाएं आमंत्रित करली,
तुम ने निज सुकुमार हृदय में यों ज्वलन्त ज्वालाएं भरली। [२]

नायक नायिका को देखता है तो बरबस पुरानी स्मृतियाँ उस के मनः पटल पर छा जाती हैं—

तुम युग-युग की पहचानी-सी,
हो कौन, सुमुखि ! अनजानी-सी ? [३]

नवीन जी एक शुद्ध कलाकार थे और इसी नाते एक प्रणयी भी थे। किन्तु उन की प्रीत देना जानती थी, लेना नहीं। तभी तो उन्होंने कहा था—

दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?
स्वयं को जब दे चुका—
तब प्रति ग्रहण का भान क्या प्रिय। [४]

नायक अपनी बाँसुरी की मीठी तान छेड़ देता है। नायिका से रहा नहीं जाता है नायक के पास पहुंच कर भौंवें चढ़ा कर कहती है :—

---

१. 'अपलक'
२. 'अपलक' पृ० ३
३. 'क्वासि' पृ० २४
४. 'निःस्वार्थ प्रीति का वह अमर गायक' लेख (देववती शर्मा) पृ० ६२
साप्ताहिक हिन्दोस्तान—नवीन विशेषाङ्क

क्यों बजाई बाँसुरी ? मैं तो, सजन, आ ही रही थी। [१]

परन्तु फिर मुख पर हँसी लाकर नायक से कहती है :--

प्रिय, मम मन-पंछी अकुलाया। [२]

स्वच्छन्द प्रेम के साथ साथ सच्ची भावनाओं को सम्यक्वाणी नवीन जी द्वारा प्राप्त हुई है। जहाँ नवीन जी ने संयोग-पक्ष के वर्णन को मार्मिक एवं हृदय ग्राहक ढंग से प्रस्तुत किया है वहाँ उन का वियोग-वर्णन भी मर्मस्पर्शी है। नायिका विरह की अग्नि में तपकर भस्म हो गई है और अब उस के लिए जीना दुर्लभ बन पड़ा है। यदि वह जीवित है तो केवल नायक की मधुर स्मृति को लेकर :—

हम तो आठों याम, प्राणधन, ध्यान तुम्हारा धरा करें हैं,
यों स्मृति-आवेशों में हम नित जिया करे हैं, मरा करें हैं। [३]

नायक की अनुपस्थिति में वह केवल विलाप ही करती है :—

तुम बिन सूना होगा जीवन,
प्रियतम ! ऐसे बोल न बोलो, कि तुम चलोगे उन्मन,
तुम बिन सूना होगा जीवन। [४]

प्रतीक्षा करते करते जब वह थक जाती है तो उस का व्यथित हृदय स्वयमेव पुकार उठता है :--

दूभर - सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम,
× × × ×
अन्तस्तल शून्य आज, आज जगत सूना है। [५]

प्रियतम को पत्र लिख कर शब्दों द्वारा अपनी दशा का वर्णन करना उसे असंगत एवं अनावश्यक प्रतीत होता है :—

मैं क्या लिखूं तुम्हें पाती, प्रिय, अब क्या लूं मैं शब्द-सहारा

---

१. 'क्वासि' पृ० ८४
२. 'रश्मि रेखा' पृ० ४०
३. 'अपलक' पृ० १२
४. 'अपलक' पृ० ३८
५. 'क्वासि' पृ० ३६-३७

जब हिय में तुम बसे हुए हो, तब अभिव्यंजन कौन विचार ? [१]

नायक को 'बेदरदी' सम्बोधित करके नायिका का कथन उल्लेखनीय है :—

मत मुंह मोड़, अरे बेदरदी, काँटे तनिक निकाले जा,
शूल मयी जीवन-डगरी है, इस को आज संभाले जा,
जाता है ? जा, विरहताप में मुझको खूब उबाले जा,
मैं देती ही रहूँ निमंत्रण, औ, तू हंस हंस टाले जा। [२]

प्रेम की यह स्वच्छन्दवादी धारा जीवन के साथ बहती चली आई और अन्त तक उन्होंने अपनी रहस्यवादी या आध्यात्मिक रचनाओं में इस को बराबर निभाया। वास्तव में नवीन जी स्वयं स्नेह के परमाणुओं से बने हुए थे। [३] वे महान थे और उन का काव्य महान है। निस्सन्देह हिन्दी साहित्य में वे उच्चपद के अधिकारी हैं। कवि के नाते उनका स्थान बहुत उच्च है और राजनीतिक नेता की दृष्टि से भी उन का ठाट अखिल भारतीय है। [४]

"नेकी को हर आदमी से और हर तरफ से ले, वह तो तेरी ही खोई हुई पूँजी है"

—हदीस

---

१. 'क्वासि'
२. 'रश्मि रेखा — पृ० १०४
३. पण्डित श्री राम शर्मा, प्रत्यक्ष भेंट के समय — पृ० ७१-७२-७३
४. नवीन जी के मित्र पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल जी से (१८-२-६५ को) प्रत्यक्ष भेंट द्वारा ज्ञात।

निराला की दार्शनिकता के स्रोत

डा० मुहम्मद अयूब खाँ

निराला स्वच्छन्दतावादी युग की सृष्टि हैं लेकिन उन्होंने अपने आविर्भाव से युगान्तर उपस्थित किया है। स्वच्छन्दतावाद का दर्शन सर्वात्मवाद अथवा नवीन रहस्यवाद है जिस के मूल में उपनिषदों की विचारधारा का संचार हुआ है। निराला का व्यक्तित्व औपनिषदिक आत्मचेता ऋषियों के समान ही विकसित हुआ है। बेसवाड़े की उन्मुक्त प्रकृति के बीच उनके चिंतन को जो प्रेरणा मिली है उसका प्रभाव गुप्त न रह सका। आलोक की मधुर किरणों से झिल-मिलाता निराला का सौम्य व्यक्तित्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को अभिभूत करने में समर्थ हुआ। जब रामकृष्ण मिशन वालों ने आचार्य द्विवेदी से 'समन्वय' प्रकाशन के लिए एक वेदान्ती की मांग की तो उन्होंने पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी का चुनाव ही नहीं किया अपितु उसके सम्पादन के कार्य-भार को संभालने का अनुरोध भी किया। "जीवन से विरक्त, परिवार के स्वजनों से अनाथ, बंगाली सामंतशाही में परिपुष्ट और पोषित, लेकिन उसी सामन्तशाही से विद्रोह किये एक सुकुमार और सुन्दर युवक स्वामी विवेकानन्द की ज्ञानपीठ में अध्यात्मवाद से अपनी आन्तरिक मूर्च्छित शान्ति को पुनः सजीव करने के लिए कलकत्ता में आ ठहरा"। [१] रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' नामक आध्यात्मिक मासिक पत्र का निराला ने बड़ी सफलता के साथ सम्पादन किया। इसके साथ ही जीवन में सन्यास का गुरुमन्त्र लेकर एकनिष्ठ भाव से कर्मठ जीवन को मधुर भाव-प्रवण-काव्य के रूप में अभिव्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार निराला जी कठोर-आध्यात्मिक साधना को सरस बनाते हुए सन्यासियों के बीच परम प्रिय बन गए। यहां उन्होंने उपनिषदों का और भी गम्भीर अध्ययन किया।

निराला उपनिषदों के तत्त्व द्रष्टा तथा वेदान्त के मर्मज्ञ हैं। स्वामी राम कृष्ण की भक्तिभावना का उनके ऊपर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। उसके पश्चात् वेदान्ती विचारों को आत्मसात् करते हुए निराला एक प्रकार से बंधन-मुक्त होगये।

---

१. महाकवि निराला अभिनंदन ग्रंथः श्री बरुआ—कलकत्ता में श्री निराला जी पृ० २६

आश्रम की स्थविरता से ऊबकर अनेक अद्वैतवादी ग्रन्थों व। अनुवाद करनेके पश्चात् वे 'समन्वय' जैसे आध्यात्मिक पत्र का सम्पादन छोड़कर 'मतवाला' में चले गये। विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त को 'समन्वय' काल में उन्होंने हृदयंगम कर लिया था उसी की अभिव्यक्ति अब निराला के गीतों में होने लगी। 'समन्वय' में प्रकाशित निराला के निबन्ध [१] इस बात के साक्षी हैं कि निराला ने विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन को केवल समझा ही नहीं वरन् उसको वाणी भी प्रदान की। 'मतवाला' काल के बाद भी विवेकानन्द का कर्मयोग रामकृष्ण के शक्ति-आवाहन के रूप में केवल निराला ने ही मुखरित किया है। निराला की 'माँ' शक्ति-रूपा है जो सांसारिक द्वैत भाव का विनाश कर सकती है और जिसमें सच्चिदानन्द ब्रह्म ही प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि निराला ने सर्वत्र आस्था और विश्वास के स्वर ध्वनित किये हैं। इन स्वरों को विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन ने ही प्रजनित किया है। निराला ने इसी आत्मविश्वास के बल पर मायातीत, स्रष्टा, एवं द्रष्टा और अनश्वर ब्रह्म के समान ही अपने अहं को उसकी अनुकृति माना है। निराला के अद्वैत-चिंतन के परिवेश में सर्वत्र जीवात्मा की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। यही कारण है कि उनके काव्य में व्यक्ति जागरण आत्मोन्नयन, अतीत गौरव, पुनरुत्थान, आत्मबोध तथा भारतीय जागरण की उद्गीतियाँ सुनाई देती हैं। इस प्रकार निराला ने अद्वैतवाद की नयी व्याख्या की है।

निराला का वेदान्त बौद्धिक तथा रागात्मक दोनों रूपों में समभावेन व्यक्त हुआ है। बौद्धिक रूप में विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त में कर्मयोग की विवृत्ति हुई है तथा रागात्मक रूप में स्वामी रामकृष्ण की भक्तिभावना तथा अद्वैतवादी रहस्यवाद को अनुराग तथा करुणा के द्वारा सरस रूप में पुष्ट किया है। विवेकानन्द के मतानुसार भी प्रेम संघात्मिका शक्ति है और घृणा विघटनकारी अनेकत्व विधायिका शक्ति। [२] निराला के काव्य में अद्वैतवाद की यही परिणति रहस्यवाद की संज्ञा पाती है। दर्शन के भावना-प्रधान तथा चिंतनप्रधान रूपों से निराला को कवि का हृदय तथा दार्शनिक का मस्तिष्क मिला है।

---

१. (१) समन्वय: वर्ष ६ अंक १०—'स्वामी सारदानन्द जी महाराज से वार्तालाप'।
   (२) ,, ,, ७ ,, ८—युगावतार भगवान श्रीकृष्ण।
   (३) ,, ,, ८ ,, २—वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द।
२. विवेकानन्द—साहित्य, जन्मशती संस्करण।

यहां यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि विनयपरक गीतों में अथवा रहस्यवादी प्रेमपरक कविताओं में जहां दार्शनिक परिणति होती है वहां वे रवीन्द्र की विचारधारा से अनुप्रेरित हैं। यह दार्शनिक परिणति काव्य का ही एकात्म रूप हो जाता है। शृंगार-वर्णन में जहां भी दार्शनिक परिणति होती है वहां रवीन्द्र की सी भाव-प्रवणता दिखाई देती है। ऐसे स्थलों पर निराला के दार्शनिक चिन्तन में नारी के प्रति उदारता, ब्रह्मसमाज के द्वारा दी गई उपनिषदों की सी भावपूर्ण रहस्य-दृष्टि तथा कबीर की कोमल, करुण, मसृण अनुभूतियों की विशिष्टता जिस प्रकार रवीन्द्र के काव्य को अनुप्राणित करती रही है उसी प्रकार निराला के काव्य को प्रेरणा देती रही है। "आधुनिक युग में रवि बाबू ने कबीर से प्रभाव ग्रहण कर काव्य में दर्शन को स्थान दिया। इनका प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर भी पड़ा। इस दार्शनिक विचारधारा की ओर निराला विशेष रूप से उन्मुख हुए।" [१] लेकिन रवीन्द्र जहां भावाकुल, मधु भीगे, वेदनामय मदिर रहस्यवादी गीतों के ही गायक हैं वहां निराला आत्मिक ओज से आप्यायित, संघर्षप्रधान, अनुभूति परक तथा भावप्रवण गीतों की सृष्टि करने में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने दोनों रूपों पर समभावेन अधिकार प्राप्त किया है। रवीन्द्र के चिंतन के स्रोत ब्रह्म समाज, कबीर और विवेकानन्द हैं और निराला ने रवीन्द्र से इन्हीं स्रोतों को पाकर एक मौलिक चिंतन में ढालने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि निराला रवीन्द्र का प्रभाव स्वीकार करते हुए भी अपने काव्य में उदात्तरूप अनुभव करते हैं। प्रायः निराला कभी कभी रवीन्द्र की कविताओं का पाठ भावभंगिमा तथा रस निमग्नता के साथ करते करते उनकी कविताओं से अपनी कविताओं की तुलना करने लगते थे। "सौभाग्य से यदि उन्होंने रवीन्द्र की कतिपय कविताओं से अपनी कविताओं की तुलना शुरू करदी, तब तो निश्चय ही एक ऐसे साहित्यिक आनन्द का आकलन होता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। एक सचेष्ट द्रष्टा और कलामर्मज्ञ के नाते वे कभी अपनी कविता को उन्नीस और कभी बीस बताकर निर्भय निष्पक्षता का प्रतिपादन करने में नहीं चूकते।" [२]

इस प्रकार निराला के मुख्य प्रेरक स्रोत तो यही हैं किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ गम्भीर प्रभाव अन्य दर्शनों के भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। ये प्रभाव-रूप हैं बौद्ध-दर्शन तथा मार्क्सवादी भौतिक दर्शन। बौद्ध दर्शन का वह परम्परित रूप

---

१. क्रांतिकारी कवि निराला—पृ० २१७ डा० बच्चन सिंह।
२. महाकवि निराला अभिनंदन ग्रंथः पृ० ५७ गंगाप्रसाद पाण्डेय संस्मरण।

थोड़ा सा परिवर्तित होकर आया है। कर्म की महत्ता दूसरों के प्रति करुणा और सहानुभूति, लोक-सेवा और शून्य या निर्वाण की नवीन व्याख्या निराला ने की है। जिस प्रकार प्रसाद जी ने 'अरी करुणा की शान्त कछार' और बुद्ध के प्रति निवेदित रचनाओं में उनकी पर-दुःख कातरता और लोक-मंगल-भाव को श्रद्धांजलि अर्पित की है उसी प्रकार निराला जी ने भी बुद्ध के प्रति श्रद्धा अर्पित की है। निराला के चिंतन का गन्तव्य अद्वैत की दशा ही है। अद्वैत की स्थिति का अनुभव करते हुए लोकोपयोगी रूप अर्थात् समानता का आदर्श ही निराला को मान्य है वे जगत् के मिथ्यात्व को नहीं स्वीकार करते। संसार की प्रायः प्रत्येक विचारधारा किसी न किसी रूप में विकासवाद अथवा उदात्तीकरण की प्रक्रिया को मानतीं आ रही है। चरम नास्तिकता और चरम आस्तिकता दोनों ही विकास के प्रतिफलन की स्थितियां हैं। एक नकारात्मक रूप से जिस शून्य या निर्वाण की स्थिति में पहुंचा देती है तो दूसरी भावात्मक रूप से अद्वैत-स्थिति में पहुंचाती है। बौद्ध-दर्शन का 'शून्य' अभाव से नितान्त भिन्न है। "अभाव की कल्पना सापेक्ष कल्पना है। परन्तु शून्य निरपेक्ष परम तत्त्व का सूचक है। यह शून्य ही उपरोक्त अद्वैत तत्व है।"[१] इसे प्रकार विवेकानन्द, निराला और बुद्ध के कथ्य में कोई भेद नहीं। शून्य की स्थिति तक आते आते नास्तिकता और आस्तिकता दोनों का अपूर्व संगम हो जाता है। निराला ने इन के समन्वय से ही अद्वैत की पुष्टि की है।

वास्तव में निराला ने विश्व-दर्शन के समन्वय द्वारा मानवतावादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस मानवतावादी दर्शन का आधार सामाजिक उपयोगिता है। भारत सदैव से समन्वय तथा मानवतावाद के पक्ष में रहा है। भारत की वर्तमान स्थितियों से जिनमें मानव-मानव में भेद-बुद्धि कार्य कर रही है, निराला क्षुब्ध और असन्तुष्ट हैं। वे मानव-निर्माण की उदार वृत्तियों का स्मरण कराते हैं जिन के आधार पर भारत विश्व के किसी भी उन्नत समाज का प्रतियोगी बन सकता है। "भारत का वह समाज जहां मनुष्य बनने की रीतियां अब भी रह गई हैं जो अपने महान विचार तथा उदारता से आज भी संसार को समाज शास्त्र से मुकाबला करने के लिए निस्संकोच निस्त्रास खड़ी हैं।" [२] वेदान्ती निराला ने इसी आधार पर सर्वधर्म-समन्वय को उचित माना है। उनका विश्वास है कि सभी धर्म और दर्शन सिद्धान्त रूप से अभिन्न हैं। "कुरान का असल तत्व जो 'लाइलाहा इल्लाल्ला' हैं, वह 'एकमेवाद्वितीयम्'

१. हिन्दी साहित्य का ग्रहत इतिहास प्रथम भाग सं राजबली पाण्डे पृ० ४५४
२. हमारा समाज—प्रबन्ध-प्रतिमा—निराला पृ० ३३४

का अक्षर-अक्षर अनुवाद है।" [१]

इसी प्रकार बौद्ध-दर्शन के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा है। अपनी समन्वयकारिणी दृष्टि से वे अद्वैत और शून्य में कोई भेद नहीं देखते। आस्तिकता और नास्तिकता दर्शन की इस भूमिका में प्रतिष्ठित होकर अभिन्न रूप प्राप्त करती हैं। "चरम आस्तिकता एक ही बात है। शून्य को चाहे कुछ नहीं कहलीजिए या सब कुछ। वह पूर्ण भी है और कुछ भी नहीं। यही नास्तिक और आस्तिक-वाद का रहस्य है। यही कपिल, बुद्ध और नास्तिक दर्शन कहते हैं और यही वेदान्त, गीता और पतंजलि आदि आस्तिक दर्शन। यही सब से ऊंची भूमि है।" [२]

इसी ऊंची भूमि में पहुंच कर निराला भौतिकवादी दर्शन अर्थात् मार्क्सवादी दर्शन की चरम सीमा अर्थात् शून्य की प्रतीक्षा करते हैं—"योरप के भौतिक विज्ञानवाद को और एक सीढ़ी चढ़ना है, बस सब फैसला प्रकृति कर देगी।" [३] निराला के मतानुसार प्रकृति स्वयं समभाव रखती अथवा साम्य की स्थापना करती है। "अभिप्राय यह कि प्रकृति ने ही साम्य की स्थापना करदी, सब जातियों के एक ही कार्य तथा एक ही अधिकार कर दिये।" [४]

वास्तव में निराला का व्यक्तित्व ही बहुत उदार है। वे वर्णाश्रम प्रधान सनातन हिन्दू परिवार में जन्म लेने पर भी साम्यवादी सर्वधर्म समता के पक्ष में रहे हैं। कुल्लीभाट में ऐसा उदाहरण है—"निराला एक वृक्ष हों जिसकी जड़ें कान्य कुब्ज बैसवाड़ी हैं, शाखाएं विश्व भर की वाताश्लेष करती सर्व दिशोन्मुख।"

निराला के परवर्ती काव्य में साम्यवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। वहां वे अद्वैत और मार्क्सवाद का तो समन्वय नहीं कर सके हैं लेकिन आध्या-त्मिकता और भौतिकता का समन्वय मानवतावादी विचारधारा के आधार पर अवश्य कर सके हैं। कवि का दृष्टिकोण यहाँ पर सदैव सामाजिक रहा है। इसी दृष्टि से निराला ने अद्वैत को देखा है और साम्य को भी। और स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो मैं निर्द्वन्द्व होकर यह कह सकता हूं कि निराला ने सदैव प्रत्येक स्थान पर साम्यवादी विचारधारा को उसके साम्यतत्व से भारतीय अद्वैतवाद की परिपुष्टि का साधन माना है। निराला ने यथार्थ को महत्त्व देते हुए भौतिक जगत्

---

१. प्रबन्ध पद्म — पृ० ३१
२. प्रबन्ध पद्म — पृ० ४४
३. प्रबन्ध पद्म — पृ० ४४
४. प्रबन्ध पद्म — पृ० २३७

के प्रति आकर्षण ग्रहण किया है : भौतिक जगत् हमारे मन पर प्रभाव डालता है —जैसी उसकी प्रतिच्छाया पड़ती है उसी का मूर्त रूप काव्य में ग्रहण किया जाता है। प्रगतिशील निराला जड़ चेतन दोनों को अद्वैत की पुष्टि करने के लिए समान महत्व देते हैं—"जड़ और चेतन, सबकी प्रकृति कवि को अपना स्वरूप दिखा देती है। वे दर्पण हैं और प्रकृति का प्रत्येक विषय उन पर पड़ने वाला सच्चा बिम्ब है।" [१]

इतना ही नहीं अपितु निराला जगत् को कभी भी मिथ्या नहीं मानते। उनके छन्द के प्रत्येक चरण से यही व्यंजना निकलती है। निराला का वेदान्त जगत् के रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द की आसक्तियों तथा लौकिक अनुभूतियों को अलौकिक रूप देता है। यही उनके प्रगतिवाद का रूप है। लेकिन जीवन स परे कोई ज्ञान और अनुभूति नहीं है [२]

जिस प्रकार साम्यवादी विचारधारा प्रगति का आह्वान करती है निराला ने भी उसको जीवन के प्रांगण में आमंत्रित किया है। लेकिन जहां मार्क्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आर्थिक आधार पर विश्लेषण करते हैं वहां निराला जी आध्यात्मिक आधार पर द्वन्द्व अथवा जीवन की सम-विषम परिस्थितियों के संघर्ष द्वारा प्रगति को उपयुक्त मानते हैं। इस प्रकार मृत्यु जीवन को प्रगति की चरम सीमा तक ले जा सकती है। जीवन की प्रगति नश्वरता के कारण ही है। प्राण नित्य नवीन रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्व के बाद विकास के रूप में समाज की एक नवीन व्यवस्था स्थापित करना बताता है वैसे ही वेदान्त जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व के पश्चात् जीवन का नवीन रूप बताता है, मेघमाला के वर्षण तथा उसके विनाश से पृथ्वी को नवीन जीवन मिलता है, कवि को कादम्बिनी यही संदेश देती है। [३] निराला जी इसी आधार पर रूढ़ियों का ध्वंस करने को उत्सुक हैं, उनके बहुत से गीतों के प्रगति के इन आह्वान को देखा जा सकता है—

जलादे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूंगा तन जीवन-हीन। [४]

---

१. रवीन्द्र कविता कानन — पृ० ६७
२. 'कौन तम के पार रे कह'—गीतिका — पृ० २४
३. 'मेघ के घन केश'—गीतिका — पृ० ५०
४. जलादे जीर्ण शीर्ण प्राचीन—गीतिका — पृ० ३६

युगान्तरकारी कवि निराला का व्यक्तित्व साम्यवादी विचारधारा तथा वेदान्त की दार्शनिक प्रतिपत्तियों के समन्वय से ही क्रान्तिकारी रूप धारण कर लेता है। साहित्य-क्षेत्र में भाषा-भाव छंद इत्यादि सभी में वे प्रगतिशील दिखाई देते हैं। मनुष्य की मुक्ति के समान निराला ने कविता की भी मुक्ति मानी है। "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धनों से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना।" [१] निराला ने सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रों की रूढ़ियों के उच्छेदन के लिए उद्घोष किया है "हिन्दी में समझ वाला युग अभी नहीं आया। इसलिए नए साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियों से अभी जन-मस्तिष्क पूर्ववत् जकड़ा हुआ है। रूढ़ियों पर बार बार प्रहार द्वारा इसकी शृंखला तोड़ देनी है।" [२] इस प्रकार निराला प्रगति के समर्थक हैं।

'कुकुरमुत्ता' तथा "नये पत्ते' में युगानुकूल प्रगति की रूपरेखा है। दोनों में कवि की सहानुभूति निम्नवर्ग के प्रति प्रकट हुई है लेकिन उसका विकास मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अथवा मानव के संघर्ष तक नहीं हो सका है। कवि 'मास्को डायलाग्स' में तीखे व्यंग्य के द्वारा समाजवादी नेताओं की पोल खोल देता है। कवि ने मार्क्सवादी दर्शन का अतिरंजित रूप श्रेयस्कर नहीं माना है। उसकी भौतिकवादी दृष्टि पृथ्वी का स्पर्श करके ही अलौकिकता की ओर उन्मुख हो जाती है। मानव की समानता और उसके प्रगतिशील रूप को देखते हुए निराला मानववादी दर्शन के प्रणेता कह जा सकते हैं। "उनकी करुणा जो दलितों को मनुष्यता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करती है, उनका आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टिकोण जो समाज के निहित स्वार्थों की असलियत पहचानता है, उनकी संघर्ष का सामना करने की प्रवृत्ति और जीवन में आस्था उन्हें आधुनिक निराशावाद से भिन्न प्रगतिशील मानवता का कवि सिद्ध करते हैं।' [३] इस प्रकार निराला ने इस मानवतावादी दर्शन का प्रतिपादन वेदान्त तथा मार्क्स-दर्शन के समन्वय से ही किया है।

---

१. परिमल की भूमिका पृ० १६
२. निराला अभिनन्दन ग्रंथ: वरुआ—श्री निराला जी कलकत्ता में पृ० १४०
३. प्रो० धनञ्जय वर्मा :—निराला काव्य और व्यक्तित्व पृ० २३६
डा० रामविलास शर्मा को लिखे गये पत्र दिसम्बर ३०, १६५८ से॥

लल्लेश्वरी और कबीर के काव्य में समानताएँ

डा० मोहिनी कौल

लल्लेश्वरी और कबीर दोनों अपने अपने युग के विशिष्ट कवि हैं। दोनों के काव्य का वर्ण्य-विषय आध्यात्मवाद है। दोनों कवियों ने ईश्वर-भक्ति की अपार और अनन्त महिमा का गान अपने अपने काव्य के द्वारा किया है। अतः भक्त हृदय की विह्वलता तथा व्याकुलता का पूर्ण चित्र हमें इनकी रचनाओं में मिलता है। आध्यात्मवाद के धरातल में उन्होंने उस परमतत्व के प्रति आकर्षण, अपार विह्वलता तथा तन्मयता का ही विविध प्रकार से चित्रण किया है। उस विराट ब्रह्म के प्रति आत्मविभोर होकर दोनों कवियों की वाणी गूंज उठी है। लल्लेश्वरी कहती हैं :—

लोलुकि व्वखलु वालिंज् पिशिम्
क्वकल चजिम तु रूजुस रसु
बुजुम तु ज़ाजिम पानस् .चुशिम्
क्वु ज़ानु तवु सूति मरु किनु लसु
व्वय् ना म्वयस् तु व्वय् न मरु
येलि अछव् डेशु तु कनव् बो.ज़ु

अर्थात मैंने प्रेम रूपी ओखली में अपने हृदय को पीस डाला, बुरी मानसिक प्रवृत्तियों का निवारण करने के उपरान्त मैं एकरस हो गई। मैंने प्रेम विह्वल हृदय को जला कर भून डाला और स्वयं उसका चर्वण किया। मुझे यह मालूम नहीं कि इन प्रयोगों के द्वारा मैं नष्ट हो जाऊंगी या मेरी आत्मा अमर ही रहेगी। न मैं नष्ट ही हो गई हूँ और न आगे ही नष्ट होने की संभावना है, जब कि मैं आँखों से देख सकती हूँ और कानों से भी सुन सकती हूँ।

कबीर दास जी भी कहते हैं :—

"अंखडियां झांई पड़ी, पन्थ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला पड़या, राम पुकारि पुकारि॥

कहने का तात्पर्य है कि शुद्ध आध्यात्मिक साधना का निरूपण करना ही लल्लेश्वरी तथा कबीर के प्रिय विषय रहे हैं। दोनों के काव्य की प्रधान प्रेरणा रहस्य-मूलक ईश्वरानुभूति है जिसकी पुष्टि के लिए उन्होंने भक्ति-भावना और योग-साधना की चर्चा भी की है। दोनों का उस ब्रह्म के प्रति शुद्ध, सात्विक निश्छल एवं आत्मिक प्रेम है जिसमें पीड़ा है, तीव्रता है, गहनता है और विचारों की उदात्तता भी है। उनकी आत्मा उस परमात्मा के प्रति सहज रागात्मक भावना की अभिव्यक्ति में व्यस्त है, और यही उनका भक्ति भी है। उनके इस भक्ति-भाव में आत्मसमर्पण की तीव्रता और बलिदान की गहन भावना भी है। उनकी विकल भावनाओं की प्रेरणा वासना की लोलुपता तथा इन्द्रिय-लिप्सा में नहीं अपितु उन विह्वल अनुभूतियों में है जिनका प्रभाव स्वच्छ और महान है। दोनों की काव्य-साधना का प्रमुख आधार धर्म है, जिसकी परिणिति उन्होंने अपनी भवानुभूति में की है। दोनों कवियों की यह काव्य-साधना अयत्नज है। आत्मा की सुवासिनी अभिव्यक्ति द्वारा उन्होंने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में रहस्यमय चित्रों की अभिव्यञ्जना की है। ब्रह्मरस से इनका काव्य सराबोर है। लल्लेश्वरी कहतीं हैं :—

> ग्वरन् वोनुनम् कुनुय् व.चुन्
> न्यबरु दोपनम् अन्दरुय् अ.चुन्
> सुय् गव् ललि मे वाख् तु व.चुन्
> तवय् मे हथोतुम नोंगुय न.चुन्

अर्थात् गुरु ने मुझे उस ब्रह्मज्ञान रूपी एक शब्द का ज्ञान करा दिया कि बाह्य शारीरिक विधियों से किस प्रकार आत्मज्ञान की उपलब्धि संभव है। वही मुझ लल्ला के लिए सिद्धि का शब्द बन गया और इसी लिए उस 'नोंगुय' फूल की भाँति मैं विविधि गति से नित्य निरन्तर नृत्य-निरत रही।

कबीर दास जी भी कहते हैं :—

> राम रसाइन प्रेमरस, पीवत अधिक रसाल।
> कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल॥

लल्लेश्वरी तथा कबीर के काव्य-विषयों में प्रायः उन का साधक-रूप ही सर्वत्र दृष्टिगत होता है। जिस प्रकार लल्लेश्वरी के "वाख्यों" में हमें अलौकिक आध्यात्मिक—आनन्द के दर्शन होते हैं उसी प्रकार कबीरदास जी के काव्य में भी उसकी उपलब्धि होती है।

इसके साथ दोनों के काव्य में उपदेश तथा दर्शन का अद्भुत सामंजस्य भी हुआ है। दोनों स्वभाव से साधक थे परन्तु दोनों में उपदेश देने की विशिष्ठ प्रवृत्ति थी। आत्मा और परमात्मा के रहस्यमय सम्बन्धों की दार्शनिक विवेचना करने में दोनों दक्ष थे।

दोनों की रचनाओं में जहाँ स्वभावतः विषय-वस्तु की गरिमा मिलती है वहाँ काव्य-सौन्दर्य की विशालता भी मिलती है। दोनों की काव्य-रचनाएँ हमें मुक्तकों के रूप में मिलती हैं जिन में उन्होंने आत्माभिव्यक्ति को ही प्रमुख स्थान दिया है।

बाह्य-वस्तुओं का चित्रण करने में उनकी वृत्ति नहीं रमी हैं अपितु मुक्तक के आश्रय में उन्होंने जीवन और जगत की रहस्यात्मकता का परिचय दिया है। दोनों के काव्य में भावना की प्रधानता है। भाव-चित्रण में ये कवि सिद्धहस्त थे। दोनों के काव्य में अनायास ही भावतत्व के साथ साथ बुद्धितत्व एवं कल्पनातत्व का भी समावेश हुआ है। बुद्धितत्व में भी अनुभूति पक्ष अधिक प्रबल है। उसमें बोधगम्यता है।

लल्लेश्वरी और कबीर का काव्य शुष्क एवं नीरस आध्यात्मवाद की दुहाई नही देता, अपितु उसमें उनकी कल्पना की उड़ान एवं भावमयी तन्मयता का मणिकाँचन योग भी है। अनेकानेक मार्मिक चित्रों की उन्होंने अभिव्यञ्जना की है।

लल्लेश्वरी ने चक्की और साधना का रूपक बाँधकर यह कल्पना की है कि जिस प्रकार बिना किसी बाधा के चक्की आटा पीसने में निरन्तर व्यस्त रहती है उसी प्रकार से साधक को भी चाहिए कि वह ईश्वर की उपलब्धि के लिए साधना में तल्लीन रहे। क्योंकि इस अगोचर तत्त्व-ब्रह्म की साधना और प्राप्ति उतनी ही रहस्यमय है जितना कि उसका स्वरूप।

कबीरदास जी भी कहते हैं :—

"आँगनि बेलि अकास फल अण व्यावण का दूध"।

जिस प्रकार भावना एवं कल्पना-पक्ष में दोनों कवि सशक्त रहे हैं उसी प्रकार से उनका कलापक्ष भी सुदृढ़ है। तीक्ष्ण उद्भावना-शक्ति के साथ शब्दों के सुकर प्रयोग एवं शैली की प्रभविष्णुता दोनों में समान रूप से पाई जाती है। दोनों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यद्यपि वे निरक्षर थे परन्तु सुन्दर एवं प्रेषणीय जनवाणी में अपनी अनुभूति को जनता तक पहुँचाने में पूर्णरूपेण सफल

रहे थे; जैसा कि आचार्य ह०प्र० द्विवेदी ने कहा है कि भाषा कबीर के सामने लाचार सी नज़र आती है उसी प्रकार कश्मीरी भाषा की आदि-कवियित्री लल्लेश्वरीके काव्य में भी कश्मीरी भाषा उस नारी-सन्तके हृदय की आज्ञाकारिणी एवं पटु अनुचरीसी लगती है, जैसे भाव उदात्त है वैसी ही भाषा भी है। उस भाषा में आत्मविस्मृत करने की शक्ति है। आचार्य शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'पंचरंगी' कहा है; उसी प्रकार लल्लेश्वरी की भाषा में भी संस्कृत एवं अरबी-फारसी शब्दों का प्रचुरता के साथ प्रयोग हुआ है। दोनों की भाषा व्यंग्यात्मक एवं प्रतीक-पद्धति पर चलती है।

दोनों कवि अलंकार-शास्त्र के मर्मज्ञ नही थे परन्तु अद्भुत कवित्व-शक्ति एवं अनुभूति की तीव्रता तथा ईमानदारी के कारण दोनों के काव्य में स्वतः ही अलंकार काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए दौड़ आते हैं। उनकी उपदेश प्रधान उक्तियों में अधिकतर रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि का समावेश हुआ है। अलंकारों के समावेश से उनके काव्य में शब्दगत, अर्थ-गत तथा गुणगत रमणीयता आ गई है।

छन्दयोजना भी दोनों की अनायास ही है। कबीर का दोहा छन्द अत्यन्त प्राचीन एवं अपभ्रंश का लाड़ला है। लल्लेश्लरी के "वाख्यों" को भी हम दोहों की उसी कोटि में रख सकते हैं। उनका एक 'वाख्य' देखिये :—

"अकुय ओमकार युस नाबि देर,
ववम्बुय् ब्रमांडस सुम् गरे,
अख सुय् मन्थुर् .चयतस केर,
तस सास मन्थुर क्याह् करे॥

तुक की दृष्टि से लल्लेश्वरी के अधिकांश 'वाख्यों' की दूसरी और चौथी तथा पहली और तीसरी पंक्ति के अन्तिम शब्द समान हैं। यति और गति भी लगभग "दोहा" छन्द के निकट ही है।

दोनों कवियों के काव्य गेय हैं, गेयता वास्तव में इन की काव्य-साधना का प्राण है। दोनों की ही उपदेशात्मक उक्तियों में प्रसाद गुण का प्राचुर्य है। दोनों के काव्य में वैविध्य का अभाव खटकता सा है, अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की एक रूपता पाई जाती है।

लल्लेश्वरी और कबीर का काव्य अपने अपने व्यक्तित्व, युग एवं देश की विशुद्ध विभूति है, और उनमें अनेक आश्चर्य जनक समानताएँ पाई जातीं हैं।

मुख़्तार साहब—मेरी नज़र में

डा० शकीलुर रहमान (रीडर, उर्दू तथा फ़ारसी विभाग)

सन् १९५६ में श्री प्रताप कालेज में उर्दू का लेक्चरर बन कर जब मैं आया तब पहले ही महीने की तनख्वाह (किसी कानूनी खानापूरी की कमी की वजह से) मिलने में जब शक हो गया तब जनाब सादिक साहब के कहने पर मैं उन दिनों के डिप्टी डाइरेक्टर एजूकेशन श्री गुलाम अहमद मुख़्तार से मिलने गया। यह पहली मुलाकात बहुत मुख्तसर थी, लेकिन मुख़्तार साहब की तबीयत को पहचानने में मुझे देर न लगी। मैं उस दिन तीन बजे उनसे उनके दफ़्तर में मिला, एक छोटे से कमरे में बैठे थे, जब मैं अन्दर गया तो बहुत इखलाक [१] से मिले। उन्होंने पूछा—"सिगरेट पीते हैं ?" मैं ने कहा—'नहीं'। "उम्र क्या है ?" "आपके नज़दीक बच्चा और कालेज के लड़कों के नज़दीक बुड्ढा हूं"—मैंने जवाब दिया। वे हंसे और कहा—"तो आप बुड्ढ़े-बच्चे हैं, बहुत खूब।" वे देर तक मेरी बातों से लुत्फ लेते रहे, बहुत कुछ पूछा, घर के बारे में, ख़ानदान के बारे में, तालीम के बारे में—और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मुख्तार साहब मेरे बहुत बडे हमदर्द हैं। वे जो कुछ पूछ रहे हैं कुछ जानने के लिए। इन्हें मुझसे हमदर्दी होती जा रही है, एक घन्टे तक बातें हुई, रियासत में तालीम के मौज़ू [२] पर। इसी वक्त मुझे मालूम हुआ कि मुख्तार साहब ज़िन्दगी के न जाने कितने उतार चढ़ाव से गुज़रे हैं, वे ज़िन्दगी में शिकस्त के कायल नहीं है। वे तालीमी मसायल [३] पर गहरी नज़र रखते हैं और रियासत जम्मू व कश्मीर में तालीम के मयाद [४] को ऊंचा उठाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उन के साथ नई नस्ल के बहुत से जवान हों ताकि रियासत की तालीम सारे हिन्दोस्तान के लिए एक मिसाल बन जाए। मुख्तार साहब की ज़िन्दगी के वाकात [५] सुनकर और उनके ख़यालात सुनकर मुझपर बहुत गहरा असर हुआ और इत्मीनान हुआ कि रियासत में एक पढ़ा-लिखा बाशऊर, दूर-अन्देश सूझ-बूझ रखने वाला तालीमी मसायल को समझने और उन्हें सुलझाने वाला वज़ीरे-तालीम [६] है, तो उसके साथ ऐसे लोग भी है जो तालीम के मैदान में काम करते हुए थकते नहीं और

---

१. शिष्टाचार २. विषय ३. समस्याओं ४. स्तर ५. घटनाएँ
६. तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री सादिक साहब।

थकते हैं तो गालिब की तरह यह भी कहते हैं :—

"न होगा यक बयाबाँ मांदगी से ज़ौक कम मेरा।
हुबाबे मौजे रफ्तार है नक्श-ए-कदम मेरा ॥"

यानी जिस तरह दरिया की मौजों में रवानी रहती है इस तरह मुझमें भी रवानी है, दरिया आगे बढ़ते हुए पीछे बहुत से बुलबुले छोड़ती हैं, मैं भी अपने पीछे अपने पांव के निशान छोड़ता हूँ। बार-बार ज़िन्दगी के फैले हुए मैदान में ख़ाक छानने के बाद भी हज़ार थकने के बाद भी मेरा सफर जारी है मेरी तमन्ना, आगे बढ़ने की ख़्वाहिश और मेरा इश्क कम नहीं हो सकता। पांव के निशानों में भी हरकत है इसलिए कि इसी निशान को देखकर दूसरी नस्ल के लोग आगे बढ़ते हैं। आदमी को आगे बढ़ना है और अपनी आरजू से सफ़र की ख़्वाहिश को ज़िन्दा रखना है। मुख़्तार साहब इसी शेर की तकदीर थे, वे ज़िन्दगी में हार मानना नहीं जानते थे। मुझे उनकी इसी बात ने ज्यादा मुतासिर [१] किया है और अब जब कि वे हमारे बीच में नहीं हैं उनकी ज़िन्दगी का यही सबक़ याद करना चाहता हूं। अच्छी कदरों के लिए जद्दो-जहद करना और हालत अच्छी भी नहीं फिर भी हार न मानना, अपने पीछे अपने कदम और पांव के ऐसे निशानात छोड़ देना जो आने वाले लोगों के लिए अहम हों, मुख़्तार साहब की ज़िन्दगी की यह बात हमेशा याद रहेगी। इस मुलाकात का मुझपर बहुत असर हुआ और मैं उनकी बातों में इस तरह खो गया कि साढ़े चार होगए दफ़्तर बन्द होगया मुख़्तार साहब उठे और उन्होंने कहा कि "अब चलिए आप को तो डलगेट जाना है" मैं उठा लेकिन मेरे दिमाग में फिर वही बात आई पहली तारीख को तनख़्वाह का मामला? अब क्या कहता? दफ़्तर बन्द हो चुका था मैंने सोचा कल आजाऊंगा हम दोनों बाहर निकले तो यक-ब-यक [२] मुख़्तार साहब को कुछ याद आया वे अपने कमरे में गए और जब बाहर आए तो उनके हाथ में कुछ कागज़ात थे, "यह लीजिए आपका काम तो आते ही कर दिया था" उन्होंने एक खत की तीन चार कापियां मुझे दीं और यह कहा कि "एक कापी प्रिन्सिपल साहब के लिए, दूसरी आपके लिए, तीसरी खज़ाने के लिए, चौथी ए० जी० आफिस के लिए। पहली को आपकी तनख़्वाह मिल जाएगी" आप सोच सकते हैं कि इस मुलाकात में मुझे एक बुज़ुर्ग के तजुरबों से कितना कुछ मिला और साथ ही दूध, चावल, दाल का मसला भी हल होगया। इसके बाद

१. प्रभावित २. अचानक

मु.ख्तार साहब से बहुत कम मिला, वे भी मसरूफ़ [१] और मैं भी मसरूफ़। जब भी मुलाकात हो जाती तो मुस्करा कर खैरियत पूछ लेते और साथ ही यह भी कहते कि "बुड्ढा बच्चा कहूं या बच्चा बुड्ढा"। मैंने मुख्.तार साहब को जब भी देखा बहुत मसरूफ-काम करते हुए।

सुबह से शाम तक काम करने वाला यह तजुर्बेकार आदमी थकने का नाम नहीं लेता था, इन्हें बहुत सी महफिलों और मजलिसों में देखा मीटिंगों और 'रैली' में देखा, हर जगह वे काम करते हुए मिले, कुछ सोचते हुए और अपनी सोच को हकीकत का लिबास पहनाते हुए मिले। जब वे यूनीवर्सिटी के प्रोवाइस-चांसलर होकर आए तो उन्हें ज्यादा करीब से देखने का मौका मिला वे मसला या 'प्रोबलम' नहीं जानते थे, और न किसी बात को 'प्रोबलम' बनाना जानते थे, मेरा ख्याल है कि वे आदमी और आदमी की बात दोनों को ही पहली नज़र में पहिचान लेते थे। यूनीवसिटी में एक बार बहुत ही अहम मसायल लेकर मैं उनके पास गया और सोचा कम से कम एक घन्टे तक बात करूंगा और तमाम बातें समझाऊंगा। लेकिन चन्द मिनटों में वे सब कुछ समझकर ज़रूरी कारवाही कर बैठे और मुझे इत्मीनान होगया। यह मामूली बात न थी। एक इतवार को उन्होंने मुझे घर पर बुलाया और यह कहा—"आइए देखिऐ मैंने क्या बाग लगाया है।" जब मैं हाज़िर हुआ तो फूलों से पहले 'गोश्ताबा' [२] को देखा उन्होंने कहा "खाइऐ, मेरी बेगम ने खुद बनाया है। मैंने खाया तो वे मुतमयिन [३] न हुए और कहा" यही खाना है कि बच्चा एक जवान होता है इसके बाद वे अपने बाग में मुझे टहलाते रहे फूलों को दिखाया, फूलों की क्यारियां दिखाई. फूलों के नाम बताए, बाग में छोटी सी छोटी चीज़ पर भी उनकी नज़र रहती थी, इस तरह, जिस तरह वे यूनीवर्सिटी के शाहजहाँ थे। वे चाहते कि यूनीवर्सिटी में उम्दा से उम्दा इमारतें तैयार हो जाएं। जब आइन्दा बरसों में जम्मू व कश्मीर यूनीवर्सिटी हर लिहाज़ में बड़ी यूनीवर्सिटी हो जाएगी तो इस शाहजहाँ का ख्वाब पूरा हो जाएगा।

मैं आदमी के ख़लूस [४] पर मर जाता हूँ यह मेरी बहुत बड़ी कमज़ोरी है मुख्तार साहब की गुफ्तगू और उनके काम में जिस चीज़ ने मुझे सबसे ज्यादा मुतासिर किया वह उनका खलूस था, यूं तो बहुत से वाकात याद आ रहे हैं लेकिन मै सिर्फ एक वाक़ये का जिक्र करना चाहता हूँ। हुआ यह, कि

१. व्यस्त २. कश्मीरी मांस-व्यन्जन ३. सन्तुष्ट ४. साफ़दिली

पाकिस्तान का जारिहाना [१] हमला शुरू हुआ और हर महल्ले में बचाव कमेटियां बनाई गई। मैं भी जवाहर नगर कमेटी का मेम्बर था। मुख़तार साहब अपने इलाके के मेम्बर थे। एक मीटिंग हुई जिसमें हमने यह सोचा कि हमें क्या 'करना चाहिए' कुछ ही दिनों के बाद दूसरी मीटिंग हुई तो हमने सोचा क्या किया 'जा सकता है' लेकिन हम सब यह देख कर हैरान रह गए कि पहली और दूसरी मीटिंग के दरम्यान मुख्तार साहब ने अपने इलाके में वह सब कुछ कर लिया. जिसके बारे में हम सोचने बैठे थे। मुख़्तार साहब ने हमारी आँखें खोल दी। कितने रुपए जमा हुए, बचाव का क्या इन्तज़ाम हुआ, जवानों को वक्त पर बेदार [२] करने के लिए क्या किया गया. मुहल्लों की औरतें इस सिलसिले में क्या कर रहीं हैं ? तमाम बातें सामने आगई और हफ्ते भर के उनके काम को देखकर हम एक दूसरे का मुंह देखने लगे। मुझे शर्म आई. एक हम हैं और एक मुख़्तार साहब हैं, एक बूढ़ा है जिस पर बहुत सी ज़िम्मेदारियां हैं और हम जवान हैं और हम पर उनके मुकाबले में ज़िम्मेदारियां कितनी कम हैं इसके बावजूद हम कुछ न कर सके। उन्होंने रियासत में तालीमी कदरों को फैलाने में जो कुछ किया है हम सब को मालूम है, और इस पूरी तारीख [३] में वे एक मुस्तकिल बाब [४] की हैसियत रखते हैं।

नेक ने तो नेक जाना, बद ने बद जाना मुझे,
हर किसी ने अपने ही, रुतबे में पहिचाना मुझे।

—अल्लामा इक़बाल

---

१. पाशविक २. जागृत ३. इतिहास ४. अध्याय

आधुनिक समालोचना और रीतिकाल

डा० रमेशकुमार शर्मा

द्विवेदी-युगकी समाप्ति तक आते-आते हिन्दी-साहित्य में एक नया ही फ़ैशन चल पड़ा था। अपनेको समय के साथ चलनेवाले चैतन्य-मन साहित्यकार सिद्ध करने के लिए अनेक कवि मध्ययुगीन कविता-विशेषकर रीतिकालीन कविता-की आँख बन्द करके आलोचना करने लगे थे। इनमेंसे अनेक विद्वान रीतिकाल की कविता से केवल 'सेकिन्ड हैन्ड' परिचय रखत थे। चूँकि रीतिकाल की कविता व्रजभाषा में है, इस कारण रीतिकाल का अर्थ व्रजभाषा की कविता और व्रजभाषा का अर्थ रीतिकालकी कविता लिया जानेलगा था। क्रमशः यह फैशन इतना प्रचलित हुआ कि रीतिकालकी कविता तक ही इन आलोचकोंने अपनेको सीमित न रखा, अपितु रीतिकाल की संस्कृति, विचारधारा, राजनीतिक तथा सामाजिक आस्थाओं को भी समेट लिया और सामूहिक रूप से सं० १७०० से १६०० तक की प्रत्येक बात इन लोगों को दूषित और घिनौनी लगने लगी। इस मनोवृत्ति के बीज भारतेन्दु-युग में बोये गए थे और उसकी जड़ें द्विवेदी-युग में मजबूत हुई थीं तथा प्रसाद-पन्त-निराला युग में उसका पूर्ण विकास हुआ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने 'पल्लव' की भूमिका में कहा है :—

"उस व्रजकी उर्वशीके दाहिने हाथ में अमृतका पात्र और बायेंमें विषपूर्ण कटोरा है, जो उस युग के नैतिक पतनसे भरा छलछला रहा है। ओह, उस पुरानी गुदड़ी में असंख्य छिद्र, अपार संकीर्णताएँ हैं!

"इन···में से जिसकी विलास वाटिका में भी आप प्रवेश करें · सब की बावड़ियों में कुत्सित-प्रेम का फुहारा शत-शत रसधारों में फूट रहा है · कुंजों में उद्दाम यौवन की गन्ध आ रही है। इस तीन फुटके नखशिख के संसार के बाहर ये कवि पुंगव नही जा सके।" [१]

पन्तजीका यह कथन आधुनिक कालके विचारकोंके संकीर्ण तथा अन्याय पूर्ण दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है!

भारतेन्दु-युग तक व्रजभाषा का बोलबाला था. फिर इन लगभग ५०-६०

---

१. श्री सुमित्रानन्दन पन्त—(पल्लव, १९४२ ई०,—पृ० ७, ९, १०)

वर्षों में ऐसा दृष्टिकोण-परिवर्तन कैसे हुआ ? खड़ीबोली और व्रजभाषा का झगड़ा इसका मूल कारण है।

भारतेन्दु-युग में खड़ीबोली के गद्यका निर्माण हुआ; उर्दू भी विकसित होती जा रही थी ; अंग्रेज़ी सरकार के प्रयासों से आवागमन के साधन बढ़ रहे थे, इसलिए देश में विभिन्न भागों के निवासी अधिकाधिक सम्पर्क में आ रहे थे; पढ़े-लिखों की सामान्य बोलचाल में खड़ीबोली का प्रयोग किया जाने लगा था ; और ऐसे समय में व्रजभाषा की एक-देशीयता सामाजिकों को खलने लगी थी। जो लोग व्रजभाषा-भाषी नहीं थे, उनके मन में व्रजभाषा के प्रति विशेष—या कहिए आवश्यक—मोह न था और समय की पुकार के अनुसार कविता को सार्वदेशिकता प्रदान करने के लिए खड़ीबोली का सहारा लेना ही उन्हें लाभप्रद सूझ रहा था। उधर व्रजभाषा वाले अपनी भाषाका पल्ला छोड़ना नहीं चाहते थे। यहाँ से एक सामान्य साहित्यिक विवाद का आरम्भ हुआ, जो कि आगे चलकर अपने वास्तविक स्वरूप को खोकर मामूली गाली-गलौज में परिणत हो गया। सृजनात्मक आलोचना और तर्कोंका स्थान छिद्रान्वेषण तथा विध्वंसात्मक मनोवृत्तिने लिया। धीरे-धीरे इस विवाद में कटुता की मात्रा बढ़ने लगी और द्विवेदी-युग में होता हुआ यह झगड़ा आधुनिक युग में पहुंचा और उसका स्वरूप एक-पक्षीय विषवमन का रह गया।

भारतेन्दु-युगमें इस विवादका आरम्भ

१९वीं शताब्दी में लावनी और खयालबाजी की प्रतियोगिताएं अत्यधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय हो गई थीं। डा० केसरीनारायण शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक काव्यधारा' में भारतेन्दु-युगके लावनी-साहित्य के उदाहरण दिए हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' में जमशेदजी होमरसजी पीरान के 'कलगीके दिलपसन्द ख्याल' (१८८२ ई०), नन्दलालका 'तुर्राराग' (१८८३ ई०), आदितराम जोइतराम तथा जोशी मनसुखराम के 'कलगिनी लावनियों' (१८८७ ई०), तथा शम्भुदयाल का 'अमसी व लावनी ख्यालात तुर्रा' (१८८८ ई०), रचनाओंकी चर्चा की है। ख्यालबाजी तथा लावनियों के अखाड़े उन दिनों परम लोकप्रिय थे। ख्यालबाजी के दो 'स्कूल' माने जाते हैं, 'तुर्रा' और 'कलगी'। अखाड़ों में इन दोनों की 'चोंचें' देखने को हज़ारों की भीड़ लगा करती थी। जनता की इनमें विशेष रुचि थी और लोकरुचि के अनुरूप ही इनकी भाषा खड़ीबोली हुआ करती थी। बाद में इनमें कुछ उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी आरम्भ हुआ। लोक-साहित्य में खड़ीबोली का प्रयोग यहाँ तक आते-आते मुखर हो उठा था।

लावनी और खयालों के अतिरिक्त लोकगीतों में सामयिक बातों पर (खड़ीबोली में) रचना होने लगी थी। डा० लक्ष्मीसागरजी वार्ष्णेयने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य'(१८५०—१६०० ई०) में भी इसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त ईसाइयों और आर्यसमाजी प्रचारकोंने भी अपने भजनों में खड़ीबोली का प्रयोग किया। आर्यसमाजी प्रचारकोंके भजनों की भाषा शिथिल होने पर भी शुद्ध खड़ीबोली थी। [१] लोक-गीत तथा खयाल-लावनी रचनेवाले ये कवि किसी विवाद को ध्यान में रखकर खड़ीबोली में रचना नहीं कर रहे थे, अपितु लोकरुचि को देखकर अपनी रचना को लोकप्रिय और सर्वसाधारण के समझने योग्य बनाने केलिए ही वे खड़ीबोली का प्रयोग कर रहे थे। उनके सामने ब्रजभाषा और खड़ीबोली का झगड़ा नहीं था। इन कवियों की इन रचनाओं का जनता ने इतना स्वागत किया कि उस काल के साहित्यकारों ने लोक-साहित्य का सृजन आरम्भ कर दिया। भारतेन्दुजी ने 'फूलों का गुच्छा' (१८८२ ई०), पं० प्रतापनारायण मिश्रने 'मनकी लहर' (१८८५ ई०), पं० श्रीधर पाठकने 'एकान्त-वासी योगी' (१८८६ ई०), पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'कजली कादम्बिनी' (१८६० ई०), बाबू बालमुकन्द जी गुप्त ने 'जोगीड़ों का संग्रह' (१८८७-६६ ई०), लिखा। पाठकजी के 'एकान्तवासी योगी' के प्रकाशन से खड़ीबोली और ब्रजभाषा का झगड़ा आरम्भ हुआ। ब्रजभाषा के पक्षपातियों को खड़ीबोली का यह 'बेजा दखल' बुरा लगा और खड़ीबोली वालों के साथ जनरुचि और समयकी माँग थी। खेमे गढ़ गये और भाषा-युद्धकी भेरी बज गई। लोक-काव्य ने खड़ीबोली की नींव दृढ़ कर दी थी [२] और दृढ़ नींव पर खड़े होने के कारण खड़ीबोली ने टक्कर लेना आरम्भ कर दिया।

उर्दू का विकास होना आरम्भ हो गया था और हिन्दीसे उसकी प्रतिद्वन्दिता थी। उर्दू का सामना करने केलिए एक सर्वाङ्गपूर्ण (गद्य तथा पद्य दोनों में समर्थ) भाषा की आवश्यकता थी और खड़ीबोली के समर्थकों ने खड़ीबोली को इस आवश्यकता-पूर्ति में समर्थ समझकर उसका समर्थन करना आरम्भ कर दिया। ब्रजभाषावालोंने भ्रमवश, इसे अनधिकार चेष्टा समझा और विरोध करना आरम्भ कर दिया। इस अन्धाधुन्ध विरोध में भारतेन्दु ने साथ नहीं दिया। वास्तव में भारतेन्दु ने खड़ीबोली में कविता करने का प्रयत्न किया और उसके प्रचार का

---

१. लाला देवराज कृत 'सप्ताङ्गी प्रार्थना', १८८७ ई०।

२. (श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़— 'आधुनिक खड़ीबोली कविता की प्रगति', १६२६ ई०, पृ० ६)

प्रयास भी किया, यद्यपि खड़ीबोली की कविता उनके मधुर मन के उपयुक्त नहीं पड़ती थी, परन्तु फिर भी युगद्रष्टा भारतेन्दु ने खड़ीबोली के प्रचार का प्रयत्न किया। [१] कुछ लोग तो यहाँ तक मानते हैं कि काव्य-क्षेत्र में खड़ीबोली का संचार भारतेन्दु ने ही किया। तात्पर्य यह कि इस विवाद में कटुता भरने में भारतेन्दु का हाथ बिल्कुल नहीं था।

धीरे-धीरे यह विवाद बढ़ता गया और इसके मूलमें जो व्रजभाषा वालों की मनोवृत्तिकी संकीर्णता थी, उसने इस विवाद में आरम्भिक कटुता लाने का कार्य किया। व्रजभाषा के समर्थकों ने खड़ीबोली वालों को 'बुद्धिहीन' और हठी कहना आरम्भ कर दिया। इस विवाद से विदेशी विद्वान् भी अछूते न रहे। फ्रेड्रिक पिन्काट ने खड़ीबोली के पक्ष का समर्थन किया [२] किन्तु ग्रियर्सन साहब ने खड़ीबोलीका विरोध किया। [३] व्रजभाषा वालों को उर्दू का भय था। वे समझते थे कि खड़ीबोल के सहारे उर्दू घुस आवेगी। इसी भय से भयभीत पं० राधाचरण गोस्वामी ने लिखा था—

"हम अनुमान करते हैं कि यदि खड़ीबोलीकी कविता की चेष्टा की जाए तो फिर खड़ीबोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू का प्रचार हो जाएगा। उधर सरकारी पुस्तकों में फ़ारसी शब्द घुस ही पड़े, इधर पद्य में भी फ़ारसी भरी गई तो सहज ही झगड़ा निपटा।" [४]

(हिन्दोस्तान, १५ जनवरी, १८८८ ई०)

उधर खड़ीबोली वालों ने केवल खड़ीबोली के प्रचार तक ही अपने प्रयत्नों को सीमित न रखा, वरन् उन्होंने कहना आरम्भ किया कि व्रजभाषा का ज़माना गुजर गया है, उसके विकास की चरम सीमा निकल चुकी है, उसे अब विश्राम ले लेना चाहिए।

"इस संसार में एक वस्तु एक बार ही उन्नति के शिखर पर चढ़ती है फिर या तो स्थिर हो जाती है या गिर जाती है। व्रजभाषा की कविता कई बातों में

१. भारतेन्दुजी ने एक सितम्बर १८८१ के 'भारत मित्र' में प्रकाशनार्थ कुछ पद खड़ीबोली में रचकर भेजे थे, उन पदों में साथ भेजा गया पत्र।
२. बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री—'खड़ीबोलीका पद्य, १८८८ई०, पृ० ६० (भूमिका)
३. ग्रियर्सन साहब का बाबू अ० प्र० खत्री को लिखा गया ६ फरवरी १८६० ई० का पत्र ('खड़ीबोली का आन्दोलन' पृ० ४५)
४. 'खड़ीबोली का आन्दोलन', पृ० १४—श्री अ० प्र० खत्री

उन्नति की पराकाष्ठा से भी परे पहुंच चुकी है और यद्यपि अनेक अन्य बातों में उसे उन्नति की समाई है, पर अवसर नहीं है। व्रजभाषा की कविता को विश्राम लेनेका समय अवश्य आ पहुंचा है। उसको अधिक श्रम देना आवश्यक नहीं।" [१]

(हिन्दोस्तान, ३ फरवरी. १८८८ ई०)

पं० श्रीधर पाठक के इस कथन से और अन्य विद्वानों के इसी प्रकार के कथनों से झगड़ा भाषा और भाषाका नहीं रह गया, अपितु खड़ीबोली और व्रजभाषा के साहित्यका हो गया। धीरे-धीरे खड़ीबोली वालों ने व्रजभाषा के मध्ययुगीन साहित्य पर आक्रमण करना आरम्भ किया। व्रजभाषा दल दुर्बल होता गया और द्विवेदी-युग तक आते-आते परिश्रमित व्रजभाषा पर दायें और बायें, चारों ओर से उचित और अनुचित आक्रमण होने आरम्भ होगये। पराजयोन्मुख व्रजभाषा-दल क्षोभ तथा खिसियाहट के कारण और खड़ीबोली-दल विजयमद के कारण संयम खो बैठा, औचित्य को ताक में रख दिया और इस भाषा-युद्ध में कटुता पूर्णरूपेण भर गई।

द्विवेदी-युग में

"व्रजभाषा का बहिष्कार करने से हिन्दी की प्राचीनता प्रगट न होगी और खड़ी बोली की खिल्ली उड़ाने से नवीनता नष्ट होगी। हानि दोनों से है। इसलिए दोनों दलवालों को ईर्ष्याद्वेष त्याग कर काम करना चाहिए।" [२]

उपर्युक्त प्रकार के सन्तुलित मत रखने वालों के शान्ति-प्रचार के मध्य भी व्रजभाषा और खड़ीबोली का युद्ध तीव्र से तीव्रतर होता गया। द्विवेदी-युग में आकर कुछ और नये कारण उपस्थित हुए जिनसे खड़ीबोली और व्रजभाषा वालों के मध्य की खाई और भी बढ़ गई। द्विवेदी युग की खड़ीबोली की कविता का एक प्रधान भाव था 'राष्ट्रीयता'। अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोहकी भावना से जनता को अनुप्राणित करने के लिए स्वदेशी भावना का राग फूँका गया। समय की पुकार थी कि देश में दासता के प्रति विद्रोह की भावना जगाई जाय और कवियों ने इस क्षेत्र में अग्रसर होना आरम्भ किया। देशभक्ति की अधिकांश कविताएं खड़ीबोली में की गईं उनके लिए वीर रस [३] की आवश्यकता थी। वीररस तथा स्वदेशी-भावना में जो आत्माहुतिका रंग है, उसका मन

---

१. 'खड़ीबोली का आन्दोलन', पृ० १६

२. पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी—सिंहावलोकन, १६७४ वि० पृ० ३२।

३. जयद्रथ, वध', 'भारत-भारती' आदि।

और शरीर को तृप्त करने वाली शृंगार-भावना से विरोध है, स्वाभाविक था कि उस काल के राष्ट्रिय कवि शृंगार से दूर रहकर स्वदेशी-भावना का प्रचार करें। चूंकि ब्रजभाषा में शृंगारका आधिक्य है (और रीतिकाल उसका प्रतीक है) इस लिए राष्ट्रिय भावना के विकास के साथ-साथ शृंगार की उपेक्षा का भाव-और उसके साथ-साथ ब्रजभाषा और उसकी 'शृंगारी कविता' के प्रति विरोधका भाव भी विकसित हुआ। कहा जाने लगा कि ब्रजभाषा वीररस और देशप्रेमकी कविता के अनुपयुक्त है। यह बात 'भूषण' और भारतेन्दु की वीररस तथा देशप्रेम की कविता के रहते हुए भी कही जाती थी। ब्रजभाषा वालों ने ब्रजभाषा में वीररस तथा देशप्रेम की कविता करके इस तर्कका उत्तर नहीं दिया, अपितु खड़ीबोली के गद्यमें खड़ीबोली की कविता का विरोध ही वे करते रहे। इस विरोध में अनावश्यक कटुता भी बहुधा आ जाया करती थी। [१] यदि द्विवेदी-युगके ब्रजभाषा के कवियों ने अपनी भाषा में समय की माँग के अनुरूप कविता की होती और थोड़ा-सा हेर-फेर कर लिया होता तो ब्रजभाषा आज भी अपने पूर्व गौरवके साथ जीवित होती।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'कविताकलाप' की तीव्र, कटूक्तियों से युक्त, जो आलोचना मई, १९१३ई० की 'मर्यादा' में 'कलाप या प्रलाप' शीर्षकसे छपी थी, उसमें उस आलोचना के लेखक 'धृष्ट समालोचक' नाम के किसी गुमनाम सज्जन ने बड़ी कीचड़ उछाली और इस विवादको एक और गन्दा स्वरूप प्रदान कर दिया, और अब धीरे-धीरे इस विवाद में व्यक्तिगत छीछालेदरने प्रवेश पा लिया। [२] इस आपस की झीना-झपटी में हानि हुई ब्रजभाषा

---

१. आधुनिक कवि आशुकवि होने का दम भर रहे हैं...... चूरनवाले लटकों का लक्षण कितना प्रिय लगता है। देशका नाम लेकर एक-आध इधर-उधर के लटके सुनाओ और सुकवि बन जाओ। वंदनीय महाशयों से अति विनयपूर्ण प्रार्थना है कि इस साहित्य-परिवर्तन के युग में नव मुरीद हिन्दी पाठकों को ऐसी शिक्षा न दें, जिससे सत्कवियों का तिरस्कार ही नहीं, वरन् काव्य का आदर्श ही भ्रष्ट हो जाय।

—पं० चन्द्रमनोहर मिश्र का 'कविता का मर्म' शीर्षक लेख (इन्दु, कला ६, खंड २, किरण २, अगस्त १९१५ पृ० १४६)

२. पं० चन्द्रमनोहर मिश्र का 'कविता कर्म' शीर्षक लेख। (इन्दु, कला ६, खंड २, किरण २, १९१५ ईस्वी, पृ० १४७)
(इस निबन्ध में द्विवेदीजी और उनके शिष्य श्री गुप्त जी पर व्यक्तिगत लांछन लगाये गये)

की और उसके साहित्यकी। धीरे-धीरे खड़ीबोली पनपने लगी और व्रजभाषा के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी।

खड़ीबोली की कविता विकासोन्मुख हुई, उसमें नूतन प्रयोगों का आरम्भ हुआ। नूतन छन्दोंकी रचनाकी ओर कवियों ने ध्यान दिया तथा कविता अतुकान्त भी होने लगी। खड़ीबोली वालों ने इस प्रकार अपनी कविता को गत्यात्मकता प्रदान की और व्रजभाषा वालों ने विरोध करने के हेतु ही, इन प्रयोगों का विरोध किया। [१] नूतन छन्दों का प्रयोग तथा अतुकान्त कविता का विरोध करके व्रजभाषा वालों ने व्रजभाषा का सबसे बड़ा अहित किया। उन्होंने जन-समाजके सामने यह सिद्ध कर दिया कि व्रजभाषा और उसके समर्थक पुरान-पंथी, रूढ़िवादी, हैं और प्रत्येक प्रकार के गत्यात्मक सुधार के विरोधी हैं। इस कालके इन कवियों ने अपनी इसी रूढ़िवादिता के कारण व्रजभाषा (और शृंगार रसकी कविता) पर रूढ़िवादी होने की मोहर लगवा ली और अपने विरोधियों का कार्य स्वयं ही सम्पन्न कर दिया। यदि इस काल के कवि व्रजभाषा में अतुकान्त, छन्द-हीन तथा देश-प्रेम की वीररसात्मक कविता करना आरम्भ कर देते तो सम्भव है कि व्रजभाषा और उसके काव्य को रूढ़ होने की उपाधि न मिलती। इन लोगोंने अप्रत्यक्ष रूपसे जनता के सामने व्रजभाषा को प्रत्येक प्रकार के सुधार का विरोधी सिद्ध कर दिया तथा स्वयं रीतिकालीन परम्पराका जड़ अनुगमन करके रीतिकाल के प्रति पढ़े-लिखे लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया कि व्रजभाषा और उसका काव्य अगतिवान है।

भारतेन्दु-युग में व्रजभाषा और खड़ीबोली के झगड़े में खड़ीबोली की विजय के जो संकेत थे, वे द्विवेदी-युग में आकर सत्य सिद्ध हुए तथा द्विवेदी युग में यह बात साफ नज़र आने लगी कि खड़ीबोली ने काव्य के क्षेत्र में अपना सिक्का जमा लिया है। व्रजभाषा वालोंने इस युग में केवल व्रजभाषा का ही अहित नहीं किया, वरन् उन्होंने अपनी अनावश्यक रूढ़िवादिता के कारण आगे के युग में आने वाली रीतिकाल की अन्याय पूर्ण आलोचना के बीज भी बोये।

---

१. 'सज्जनो, कुछ ऐसे भी हैं जो बेतुकी हाँकते हैं। जब तुक न मिले और काफिया तंग हो जाय तो बेचारे क्या करें। बेतुके काव्य ही नहीं, महाकाव्य भी बनने लगे हैं। बेतुके कवियोंका कहना है कि तुक मिलानेमें बड़ा झंझट है।'

—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

(सम्मेलन पत्रिका, भाग ६, अंक ११, १२, संवत् १६७६. पृ० २८३)

प्रसाद–पन्त–निराला युग में

"हिन्दी की वाटिकामें खड़ीबोली की कविता की क्यारियां जो कुछ समय पहले दूरदर्शी बागवानों के परिश्रम से लग चुकी थी, आज धीरे-धीरे कलियां देने लगी हैं। कहीं-कहीं किसी-किसी पेड़ के दो–चार सुमन पंखड़ियां खोलने लगे हैं। उनकी आनन्द-सौरभ लोगों को खूब पसन्द आई है···हिन्दी के हृदय पर खड़ीबोली की कविता का हार प्रभात की उज्ज्वल किरणों से खूब चमक उठा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" [१]

सन् १९२९ के निरालाजी के इस कथन से यह स्पष्ट है कि खड़ीबोली की कविता विकास के मार्ग पर द्रुतगति से धावित हो रही थी। ब्रजभाषा के समर्थकों और कवियों की संख्या कम होती जा रही थी और अब वे खड़ीबोली का खुलेआम विरोध करने की रुचि भी नहीं रखते थे। उधर खड़ीबोलीके समर्थकों ने गिरे में दो लातें और लगाने के लिए ब्रजभाषा का ही विरोध नहीं किया, अपितु द्विवेदी–युग के ब्रजभाषा समर्थकों के अनगल तर्कों और रूढ़िवादिता के कारण चिढ़कर सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। रीतिकाल की कविता को ब्रजभाषा की कविता का प्रतिनिधित्व करने वाली मानकर अब रीतिकाल पर आक्रमण करना आरम्भ किया। [२] इससे पूर्व खड़ीबोली वालों ने मध्ययुगीन कविता पर कीचड़ उछालने का प्रयत्न नहीं किया था। उसे वे पैतृक सम्पत्ति ही मानते थे, परन्तु अब उसके प्रति उनकी श्रद्धा नहीं रही थी। यही अश्रद्धा की भावना आगे चलकर घृणा और द्वेष में परिणत हो गई। तात्पर्य यह नहीं है कि रीतिकाल के इन आलोचकोंने जो कुछ कहा, वह सब असत्य था; परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि आँख मूँदकर जो रीतिकाल की कटु आलोचना आरम्भ हुई, उसमें सत्य की मात्रा कम ही थी। इस आलोचना के मूल में ब्रजभाषा–खड़ीबोली का विवाद था, इसका प्रमाण यह है कि रीतिकाल के इन आलोचकों ने अपने को रीतिकाल तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् ब्रजभाषा के भक्त कवियों तक की टाँग जा पकड़ी :—

---

१. महाकवि निराला (परिमल, पंचमावृत्ति, पृ० ६, ११, भूमिका)

२. "इस काल (मध्यकाल) के कवियों को गुण्डेपन और शोहदेपन की हरकतों के अतिरिक्त और कुछ बड़ी मुश्किल से सूझता था।"

—पं० मार्कण्डेय बाजपेई, एम.ए.

('वीणा', वर्ष ८, अङ्क ११, सितम्बर १९३५, पृ० ८६२)

"......दुर्भाग्य देखिए कि उनकी कूपमण्डूकता कितनी लम्बी अवधि तक बनी रही।......सभी की प्रतिभा केवल कच-कुच-कटाक्षों तक ही सीमित रही। सूरदास तक ने अपने समस्त ज्ञान का 'सदुपयोग' अधिकांशत: राधा और कृष्ण को जोड़ी का वर्णन करने में ही कर डाला।......बात खलेगी व्रजभाषा के हिमायतियों को, परन्तु सच्ची बात यह है कि व्रजभाषा में जो कुछ भी है, उसका अधिकांश है कविता-बद्ध कोकशास्त्र और महाघृणित रूप में लिखा हुआ।"[१]

—पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र (सम्पादक 'विश्वमित्र')

बात यह थी कि खड़ीबोली में वीररस और देशभक्ति की सुन्दर कविता का होना आरम्भ हो गया था, किन्तु शृंगार के क्षेत्र में व्रजभाषा का-सा माधुर्य अभी तक उसमें नहीं आ पाया था। जैसे व्रजभाषा वालों ने दम्भ के कारण व्रजभाषा में काल के अनुसार सुधार करने के स्थान पर खड़ीबोली की कर्णकटुता का सहारा लेकर उसकी अलोचना करना आरम्भ किया था, उसी प्रकार शृंगार के क्षेत्र में हेठी होती देखकर खड़ीबोली वालों ने शृंगाररस मात्र का विरोध करना आरम्भ किया था और झट रीतिकाल पर जा टूटे। यद्यपि आगे चलकर इसप्रकार की अनर्गल बातों का विरोध विद्वानों ने किया [२], परन्तु फिर भी रीतिकाल की हानि जो होनी थी, उसका होना आरम्भ हो चुका था।

अपने को प्रगतिशील सिद्ध करने के लिए जिसे देखो, वही रीतिकालीन कविता पर कीचड़ उछाल रहा था। पहले कहा कि शृंगार अधिक है, फिर सूझी कि रीतिकाल को शृंगार के क्षेत्र में भी श्रेय क्यों दिया जाय, और तत्काल कह डाला कि वह शृंगार भी 'बेकायदे' है—

"शृंगार भी वह कायदे का नहीं रह गया। एक कवि के बाद दूसरा

---

१. 'विश्वमित्र', वर्ष ५, खण्ड ६, अंक १, अक्टूबर १६३६ ई०, पृ० ११०-१११।

२. 'उनके गुरुपद पर प्रहार न करें ..बिना उनकी अयोग्यता प्रगट किए भी हम योग्य और बिना किसी माननीय की अवमानना किए ही हम मान्य हो सकते हैं।" —हरिऔधजी (संदर्भ सर्वस्व, पृ० १६६-६७)
तथा पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने 'हमारी साहित्यिक समस्याएँ' (द्वितीय संस्करण, पृ० १६२) में प्राचीन तथा नवीन कवियों में काल्पनिक वार्तालाप करवाके कहवाया है कि :—

मगर एक इल्तमश इन नौजवानों से मैं करता हूँ;
खुदा के वास्ते अपने बुजुर्गों का अदब सीखें।

आता है और अश्लीलता के कीचड़ में लोटने को कविता का स्वरूप और अपनी प्रतिभा का दिग्दर्शन समझता है।" [१] —पं० मार्कण्डे वाजपेयी

कुछ सुधारवाद और नारी की स्वतंत्रता का नाम लेकर रीतिकाल पर बरस पड़े—

"ब्रजभाषा की अधिकांश कविता इसलिए सोने के कटोरे में हलाहल है कि वह आत्मा का नाश और पुरुषत्व का ह्रास करती है। स्त्री का जितना घोर अपमान इसमें है, उतना हिन्दी के अन्य साहित्य में मुश्किल से मिलेगा।" [२]

—पं० वेंकटेशनारायण तिवारी

'ढोर गँवार शूद्र पशु नारी' कहने वाले कवि-पुंगव तुलसी और नारी को विषय का प्रतीक मानने वाले कबीर आदि सन्तों से कुछ भी कहते न बनता था इन आलोचकों से; बस, रीतिकाल पर अपना क्रोध निकाल लेते थे। यही नहीं, कुछ लोग यहाँ तक कहने लगे कि हिन्दू-समाज में जो भी दोष है, जो कुछ भी विगर्हणीय है, वह सब ब्रजभाषा के कवियों के कारण है। देखिए—

"ब्रजभाषा देश को जगाना नहीं जानती, बल्कि सुख की नींद सुलाना जानती है और उसने अब तक देश को सुला भी रखा है।...मैं ज़ोरदार शब्दों में सर्वसाधारण के सामने, यदि आवश्यकता हो तो कुतुबमीनार पर खड़े होकर कह सकता हूं कि हिन्दू-समाज में व्यभिचार फैलाने, बेकारी, कायरता और आलस्य बढ़ाने की मिथ्यावादिता से जनता के हृदय का तेज़ घटाने के अपराधी (ब्रजभाषा के) कविगण हैं, ऐसे कवियों की कविताओं का विष हिन्दू जाति की नस-नस में घुस गया है।" [३] —पं० रामनरेश त्रिपाठी

यद्यपि इस प्रकार के बेसिर-पैरके तर्कोंका उत्तर भी दिया गया। [४]

---

१. 'वीणा', सितम्बर १९३५, पृ० ८३२।

२. सरस्वती, दिसम्बर १९३३, पृ० ४६१।

३. सम्मेलन पत्रिका, भाग २, अंक २, सं० १९८७ वि० (नवीन संस्करण पृ० ५५—६४)

४. 'ब्रजभाषा का जितना अंश अश्लीलता के प्रसंग से अशिष्ट बतलाया जाता है, वह फिर भी मानवीय है, आसुरी नहीं।...ब्रजभाषा के कवियों ने सौंदर्य को इतनी दृष्टि से देखा है कि शायद ही कोई सौंदर्य उनसे छूटा हो।'

—निराला

(प्रबन्ध-पद्म, संवत १९९१ विक्रम, पृ० १०८, ११६)

किन्तु फिर भी चूँकि ब्रजभाषा वाले अल्पमत में रह गए थे, इस कारण अधिकांश लोग बिना रीतिकाल की कविता का अध्ययन किए ही सुनी-सनाई बातों को दुहराने लगे, (इसीलिए उनका रीतिकाल विषयक ज्ञान 'सेकिन्ड हैन्ड' कहा गया है) और रीतिकालीन कविताकी कटु आलोचना करने का फैशन चल निकला।

कविवर बच्चन, महाकवि प्रसाद, कविराज पन्त, महाप्राण निराला, महादेवीजी आदि कवियों के प्रयत्नों से खड़ीबोली की कविता में माधुर्यका आगमन हुआ और धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट हो गई कि काव्य-क्षेत्र से ब्रजभाषा खड़ीबोली को निकाल नहीं सकती। ब्रजभाषा की कविता भी कम होने लगी और ब्रजभाषा के समर्थक अब भी कभी-कभी (अच्छी समयानुरूप कविता न करके) पुरानी कविता के सहारे अपना गौरव प्रकट करनेका प्रयत्न कर रहे थे। [१]

इसी समय प्रगतिवाद के नाम पर हिन्दी साहित्य में 'साम्यवाद' और 'मार्क्सवाद' घुस पड़ा। 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना में प्रेमचन्द जैसे साहित्य-महारथियों का योग था, जो कि साम्यवादी, गान्धीवादी तथा सब कुछ होते हुए भी किसी भी वाद-विशेषके खूंटेसे बंधे नहीं थे और पूर्णरूपेण भारतीय थे। धीरे-धीरे प्रगतिवाद के नाम पर कुछ लोगों का एक गुट बन गया और वे इस साहित्यिक वाद की ओट में साम्यवाद और मार्क्सवाद का प्रचार करने लगे। मार्क्सवाद के अनुसार जो कुछ भी पुराना है, वह रूढ़िवादी है, अतएव त्याज्य है। इस समय एक नया शब्द साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित किया गया—'सामन्तवादी'। साम्यवाद के अनुसार मध्ययुग सामन्तवादी था, इस कारण उस युग की प्रत्येक भावना और उस युग का साहित्य 'बुर्जुआ' तथा रूढ़िवादी था और इसी लिए घृणास्पद था। यही नहीं, प्राचीन संस्कृति तथा भावनाएं उन्हें व्यर्थ तथा मूर्खतापूर्ण लगने लगीं :—

मूढ़ 'माइथोलोजी' व्यर्थ आइडियोलोजी
रहने न पावे सड़ा देने को विचार नर
कहीं कोई मूढ़ ग्राह, रूढ़ियोंका हो प्रवाह
स्वार्थ के स्तरों में छिपा व्यर्थ का अहंकार
बन्द करो द्वार—

---

१. आगे चलकर इसी को 'विशाल भारत'—सम्पादक पं० श्रीराम शर्मा ने 'पिदरेमन सुल्तां बूद तुरा चीस्त' (मेरा बाप बादशाह था, पर तू क्या है ?) वाली प्रवृत्ति कहा था।

(विशाल भारत, फरवरी १९४८, पृ० १०४, नोट)

—पं० उदयशंकर जी भट्ट [१]

आगे चलकर जब द्वितीय महायुद्ध के समय सब राष्ट्रिय-भावना वाले विचारक जेलों में बन्द थे, उस समय मार्क्सवादी प्रगतिवाद का विशेष प्रचलन हुआ। साम्यवादी पार्टी अंग्रेजों के साथ थी। इस कारण रेडियो, समाचार पत्र तथा अन्य प्रचार के साधनों पर उसका पूर्ण अधिकार हो गया था। इन प्रगतिवादियों की जड़ें रूस में थीं, और वे रूसी सेना का गुणगान [२] करते थे तथा भारतीय नेताओं और शहीदों को गाली देते थे। इसी को देखकर डा० सुधीन्द्र ने अपनीपुस्तक 'आधुनिककवि'में (पृ० २२५) 'प्रगतिवाद' केलिए लिखा था—"यही कारण है कि एक ओर तो प्रगतिवादी शिविर में से राष्ट्रियता-विरोधी पंक्तियाँ उठ सकती हैं:—

बोस विभीषणने भी देखो, कैसा जाल बिछाया है।
कल था जो कि देवता, वह अब दानव दल ले आया है।
यह कहकर वह गला कटावेगा, अपने ही भाईका।
वह न स्वर्गका देवदूत है, घृणित दलाल कसाईका।
—श्री मलखान सिंह

और दूसरी ओर कविवर दिनकरजो 'प्रगतिवाद' की निन्दा करते हुए कहते हैं—

'मास्को का हम आदर करते हैं, किन्तु हमारे रक्त का एक-एक बिन्दु दिल्ली के लिए अर्पित है, जब तक 'दिल्ली दूर है', मास्को के निकट या दूर होने से हमारा कुछ बनता बिगड़ता नहीं। पराधीन देश का मनुष्य सबसे पहले अपने देशका मनुष्य होता है। विश्व-मानव वह किस बलपर बने। हमारे समस्त अभियानों का एक मात्र स्पष्ट लक्ष्य मास्को नहीं, दिल्ली है। मास्को के उत्थान और पतन के साथ हँसने और रोने वाले सहकर्मियों से मेरा निवेदन है कि हमने वोलगाका नहीं, गंगा का दूध पिया है। हम पर पहिला ऋण वोलगाका नहीं, गंगा का है।"

इस प्रकार इस वर्ग के आलोचकों (पं० रामविलास जी शर्मा, श्री प्रकाश चन्द्रगुप्त, श्री अमृतराय आदि) ने जो कुछ पुरातन था और मार्क्सवादकी पटरी पर

---

१. 'हंस', मई १९४२, अंक ८।
२. श्री प्रभाकर माचवेकी 'दाज्द्रास्त्व्युते सोवियत्स्की सोयूज' (सोवियत यूनियन ज़िन्दाबाद) शीर्षक कविता, जिसका शीर्षक भी रूसी भाषामें था और उनकी सांस्कृतिक गुलामीका प्रदर्शन करता था। (हंस, अक्टूबर १९४२)

नहीं बैठताथा, उसकीकटु आलोचनाकरना आरम्भ करदिया। खड़ीबोलीकी राष्ट्रिय कविताएं जो कि मार्क्सवादियों द्वारा नहीं लिखी गई थीं (राजनीतिका साहित्यपर अधिकार हो जाने के कारण समालोचना कविताकी न होकर कवि की हुआ करती थी) उनकी भी अनर्गल आलोचना करना इन महानुभावोंने आरम्भ किया। [१] मार्क्सवाद के साँचे में ढालकर कविता को देखने वाले इन 'कथित' प्रगतिवादियों ने उस समय भारतीय संस्कृति की प्रत्येक पुरातन भावना पर ही 'सामन्तवादी' कह कर आक्रमण नहीं किया, वरन् आधुनिकतम काव्यकी भी 'मार्क्सवादी' आलोचना कर डाली। श्री गजानन मुक्तिबोध अपने निबन्ध 'कामायनी, कुछ नए विचार' में लिखते हैं—

(अ) "प्रथमतः यह कि 'कामायनी' विशिष्ट रूप से भारतीय पूंजीवाद के विकास को प्रतिबिंबित करती है। वह भारतीय पूंजीवाद के बालक व्यक्तिवाद की अक्षमता और निष्फलता की कहानी है।......अन्य देशोंके अनुसार भारतीय पूंजीवाद ने सामन्ती-समाज-रचना में क्रान्ति नहीं की।"

(ब) "इस सामन्ती शासक-वर्ग का चित्रण देखिए, इस देव-सृष्टि का वर्णन देखिए—

"चिर-किशोर-वय नित्य निवासी
सुरभित जिससे रहा दिगंत
आज तिरोहित हुआ कहाँ वह
मधु से पूर्ण अनन्त वसन्त
अब न कपोलों पर छाया-सी
पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुजमूलों में शिथिल वसन की
व्यस्त न होती है अब माप।"

—('हंस' अंक ४, जनवरी १९४६)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कैसे एक विशेष राजनीतिक वाद के कारण आलोचना के सिद्धान्त और उद्देश्य ही परिवर्तित कर दिए गए, और इन मार्क्सवादियों ने किस प्रकार सामन्तवादी कहकर 'कामायनी' तक की अन्धाधुन्ध, इकतरफा आलोचना कर डाला। यह काल ऐसा था कि इसमें अपनेको प्रगतिशील

---

१. पं० रामविलास शर्मा की पं० सोहनलाल जी द्विवेदी की पुस्तक 'भैरवी' की 'बापू के छौने' शीर्षक समालोचना। (हंस, अंक १०, जुलाई १९४१)

कहने के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्त स्वीकार करके कुछ आलोचक अन्यर वतंत्र कवियों की खिल्ली उड़ाया करते थे। उन्होंने रीतिकाल को 'सामन्तवादी' आदि नामों से पुकार कर उसकी इकतरफा आलोचना की। यही नहीं उन्होंने यह भी कहना आरम्भ कर दिया कि केवल वे (स्वयं) ही प्रगतिवादी हैं और इस कारण जो उनका विरोध करेंगे उनकी गणना प्रतिक्रियावादियों में की जायगी। [१] इस प्रकार इन कथित प्रगतिवादियों ने रीतिकालको मनमानी आलोचना की। [२]

पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्री श्यामसुन्दर दास, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों ने भी अपने इतिहासों में रीतिकाल का मूल्यांकन किया, किन्तु उनमें से केवल पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ही किसी सीमा तक तटस्थ रहकर रीतिकाल के काव्य की व्याख्या की। शुक्लजी की सहानुभूति अवधी के प्रति अधिक थी। व्रजभाषा की कविता का दुर्भाग्य यह भी रहा है कि हिन्दी के समालोचकों में अधिकांश अवधी भाषा-भाषी अथवा अव्रजभाषा-भाषी रहे हैं। व्रजभाषा वालोंने खड़ीबोली को अपनाया नहीं, उधर विपक्षी दलके हाथों में खड़ीबोली के गद्य के रूप में एक शक्तिशाली हथियार आ गया, जिसका उन्होंने समालोचना के क्षेत्र में पुर-असर प्रयोग किया। अपने गम्भीर स्वभाव तथा 'प्यूरीटेनिक' (अति आदर्शवादी) प्रवृत्तिके कारण शुक्लजी शृंगार प्रधान व्रजभाषा के कवियों तथा रीतिकाल की कविता के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सके थे। उनके अनुसार तो सूर भी पूर्ण कवि नहीं रह जाते, क्योंकि सूरमें केवल एक रस और आनन्द की केवल सिद्धावस्था है [३] श्री श्यामसुन्दर दास तथा शुक्लजी के द्वारा उठाए गए प्रश्नों तथा उनके द्वारा लगाए गए आरोपों का उत्तर पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तकों में हमें पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। इस विषय पर पूर्ण विवेचन अगले लेखों में किया जाएगा, यहाँ केवल यह कहना है कि इन तीनों विद्वानों में भारतीयता (और प्राचीन साहित्य) के प्रति पूर्ण सहानुभूति पाई जाती है, इस कारण इन्होंने 'कथित प्रगतिवादियों के समान, रीतिकालकी एकपक्षीय आलोचना नहीं की और

---

१. 'जो कलाकार हमारा विरोध करते हैं, वे शोषक-वर्ग के हिमायती बन जाते हैं और प्रतिक्रियावादियोंमें उनकी गणना होगी।' —श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त (प्रगतिशील पुस्तकें, पृ० २११, 'प्रगति क्यों')

२. कविवर पन्त (पल्लव, १९४२ ई०, पृ० ७, ९, १०)

३. पं० रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि प्रथम भाग, १९४५, 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', पृ० २९२)

रीतिकाल के गुणों की ओर से आँखें सर्वथा बन्द नहीं कर ली थीं। इन तीनों में से पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल का जो मूल्यांकन किया है, वह सबसे अधिक न्यायपूर्ण और युक्तियुक्त है। इन तीनों विद्वानों के अतिरिक्त डा० नगेन्द्र ने भी रीतिकालीन साहित्य का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। [१]

"भगवान की माया से एक कछुआ नदी के एक ऐसे किनारे पर आ बसा जहाँ एक काला, विषेला बिच्छू भी पहले से ही आकर रहने लगा था। प्रारब्धवश मिलन हो जाने पर कछुए ने अपने स्नेही-स्वभाववश बिच्छू का हित करना आरम्भ कर दिया बिच्छू भी बड़ा खुश रहने लगा और दोस्ती का दम भरने लगा।

एक दिन की बात, जिस किनारे पर बिच्छू रहता था, वहां अनेक मछुए आगए और उनकी चहल-पहल में बिच्छू को उनके पैरों तले कुचले जाने का भय हो गया। बिच्छू ने कछुए से विनय की "मुझे पीठ पर बैठा कर उस पार ले चलें, मैं तो तैर नहीं सकता, आप ही मेरे प्राण बचाएँ।"

कछुआ उसे ले चला। बिच्छू मौज में आगया, संकट दूर हो गया था, उसकी नीच प्रवत्ति उभर आई। थोड़ी देर में कछुए को अपनी पीठ पर से 'खुट खुट' की आवाज़ आई, उसने पूछा "बिच्छू, क्या कर रहे हो?" उत्तर आया "भाई साहब, डंक मार रहा हूं।" चकित होकर कछुआ बोला "अरे! प्रथम तो मैं तुम्हारा हितू हूँ, दूसरे तुम जानते हो तुम्हारे डंकों का मेरी पीठ पर कोई असर नहीं होता।" बिच्छू बोला "सो तो ठीक है, पर भाई साहब! अपनी आदत को क्या करूँ? मैं काला, विषेला बिच्छू जो हूं"—और फिर वही 'खुट खुट'।

कछुए ने कुछ सोचा और चुपचाप डुबकी लगा ली। बिच्छू छटपटा कर डूब गया। "नीच को मुँह नहीं लगाना चाहिए, वह अपनी आदत से बाज़ नहीं आता"—यह कहता हुआ कछुआ उस किनारे को छोड़ अपने पुराने घर लौट गया" (एक लोककथा)

---

१. रीतिकाल की भूमिका—देव और उनकी कविता।

विभाग के कुछ विद्यार्थियों अध्यापकों एवं कर्मचारियों के साथ विभागाध्यक्ष पं० जगन्नाथ तिवारी का, उनके श्रीनगर से जम्मू स्थानान्तरण के अवसर पर लिया गया, चित्र ।



कुर्सियों पर (बायें से) : सोम नाथ कौल, सन्तोष काक (अनुसंधित्सु), सुदर्श शर्मा, श्री भूषण लाल कौल, (प्राध्यापक), डा० प्रान नाथ त्रिछल, डा० रमेशकुमार शर्मा (नये विभागाध्यक्ष), पं० जगन्नाथ तिवारी, डा० शकीलुर्रहमान (रीडर, उर्दू विभाग), डा० मोहिनी कौल (प्राध्यापक) डा० मु० अयूब खाँ (प्राध्यापक), नै० रैना, हु० वली; मोहन लाल साबू (अनुसंधित्सु)

प्रथम पंक्ति :— राज कुमारी राज़दान (मंत्री, हिन्दी परिषद्), आशा जोगी, मोहिनी भान, फूला कुमारी कौल. विनोद कुमार (कोषाध्यक्ष, हिन्दी परिषद्) मोहिनी वातलू, रा० कुमारी काक, सुदेश आनन्द, उर्मिला खन्ना (उपमंत्री, हिन्दी परिषद्)

द्वितीय पंक्ति :— श्री मुहमद भट्ट, श्री अब्दुल अहद, पं० जगन्नाथ भट्ट (लिपिक), श्री ब्रजलाल भट्ट, श्री गुलाम कादिर

हिन्दी परिषद्

इस वर्ष की गतिविधियाँ

अक्टूबर १९६५ में हिन्दी परिषद् का गठन किया गया। सर्वसम्मति से निर्णय किया गया कि विभाग के एम० ए० (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध) के विद्यार्थी तथा अनुसंधित्सु-गण इसके सामान्य सदस्य होंगे। परिषद् के निम्नलिखित पदाधिकारी निश्चित किये गए :—

संरक्षक. सभापति, उप-सभापति, मंत्री. उप-मंत्री, कोषाध्यक्ष, उप-मंत्री (सांस्कृतिक कार्य-क्रम)।

सह-उपकुलपति महोदय ने (पदेन) संरक्षक होने की सहमति दे दी। यह निर्णय किया गया कि जो उत्तरार्द्ध (एम० ए०) का विद्यार्थी पूर्वार्द्ध (एम० ए०) की परीक्षा में अपनी कक्षा में सर्वाधिक अङ्क प्राप्त करे उसे उस वर्ष के लिए परिषद् का मंत्री नियुक्त किया जाय इसी प्रकार पूर्वार्द्ध (एम० ए०) के विद्यार्थियों में से जिसने बी० ए० की परीक्षा में, हिन्दी में, सर्वाधिक अंक प्राप्त किये हों उसे उपमंत्री नियुक्त किया जाय। कोषाध्यक्ष का निर्वाचन किया जाना निश्चित हुआ तथा यह निर्णय किया गया कि. जिस विद्यार्थी ने पूर्वार्द्ध में संगीत एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यों में सर्वाधिक रुचि प्रदर्शित की हो एवं सफलता पाई हो, उसे सभापति सांस्कृतिक कार्यक्रम के परिचालन हेतु उपमंत्री नियुक्त करें। इन निर्णयों के अनुसार १९६५-६६ के लिए परिषद् के पदाधिकारी निम्नलिखित हुए :—

संरक्षक: : श्री गुलाम अहमद मुख़तार, सह-उपकुलपति कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय। (पदेन)

सभापति : डा० रमेशकुमार शर्मा, विभाग के अध्यक्ष। (पदेन),

उपसभापति : डा० मोहिनी कौल, विभाग में प्राध्यापक। (पदेन, इस निर्णय के अनुसार कि अध्यक्ष के अतिरिक्त जो शिक्षक विभाग में हों वे बारी बारी से प्रतिवर्ष उप-सभापति का कार्य करेंगे)

मंत्री : राजकुमारी राजदान (विश्वविद्यालय में पूर्वार्द्ध, की परीक्षा में, सर्वाधिक अंक [२७९] प्राप्त किए)

उपमंत्री : फूला कुमारी मोज़ा (बी० ए० की परीक्षा में हिन्दी में १०६/१५० अंक प्राप्त किए)

कोषाध्यक्ष : श्यामा सेठी (अप्रेल १९६६ में कुमारी सेठी के विभाग छोड़ देने पर, उत्तरार्द्ध के विनोद कुमार निर्वाचित हुए)

उपमंत्री (सांस्कृतिक कार्यक्रम): उर्मिला खन्ना

(संरक्षक को छोड़कर सब पदाधिकारियों तथा विभाग के अन्य अध्यापकों को मिला कर परिषद की कार्य-कारिणी का गठन किया गया)

यह भी निश्चय किया गया कि परिषद् की सामान्य बेठक प्रति शनिवार हुआ करे तथा मास में एक बेठक सांस्कृतिक कार्यक्रम की हुआ करे। इस निर्णय के अनुसार इस वर्ष में परिषद् की सामान्य एवं विशेष ३५ बैठकें हुईं। प्रथम बैठक (२६-१०-६५) 'गाँधी-दर्शन' को लेकर परिसंवाद के रूप में हुई। उसके बाद जो मुख्य मुख्य बैठकें तथा कार्यक्रम परिषद् के तत्वावधान में हुए उनका यथाक्रम विवरण इस प्रकार है :—

सर्वप्रथम, श्री भूषणलाल कौल की विभाग में प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति होने पर उनके स्वागतार्थ समारोह हुआ !

तीसरी बेठक (२६–१०–६५) में "प्रेमचन्द और उनकी साहित्यिक मान्यताएँ" पर परिसंवाद हुआ।

३०-११-१९६५ को छठी बैठक में संरक्षक महोदय ने परिषद् का औपचारिक उद्घाटन किया। सभापति ने परिषद् के लक्ष्यों पर प्रकाश डाला और कहा कि "परिषद् का उद्देश्य विभाग के विद्यार्थियों में सृजनात्मक चेतना उत्पन्न करना तथा उन्हें नवीन एवं प्रगतिशील जीवनमूल्यों की ओर उन्मुख करना है।" संरक्षक महोदय ने परिषद् की एवं उसके लक्ष्यों की भूरि भूरि प्रशंसा की तथा विश्वविद्यालय की ओर से प्रत्येक प्रकार की सहायता देने का वचन दिया।

सातवीं बैठक (१३-१२-१९६६) एक सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में हुई। इसमें विभाग के विद्यार्थियों द्वारा निम्नलिखित कार्यक्रम उपस्थित किया गया :—

एक राष्ट्रियगीत, शास्त्रीय संगीत, पंजाबी सहगान, सितार-वादन, कश्मीरीगीत, डोगरी सहगान, कश्मीरी लोकगीत (हब्बाखातून की रचना), उर्दू की गज़ल, तथा राष्ट्रगान।

कार्यक्रम को अभूतपूर्व सफलता मिली तथा उसकी संरक्षक महोदय एवं विश्वविद्यालय के शिक्षकों तथा अन्य अतिथियों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। कार्य-क्रम विश्वविद्यालय के नये सभा-भवन में उपस्थित किया गया। इस कार्य-क्रम में सफलता प्राप्त करने के उपलक्ष्य में निम्नलिखित विद्यार्थियों को पारितोषिक दिया जाना निश्चित किया गया था (संरक्षक महोदय की विमान-दुर्घटना में आकस्मिक मृत्यु हो जाने के बाद विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने इस पारितोषिक वितरण की ओर ध्यान नहीं दिया है, यह खेद का विषय है):—

राजकुमारी राज़दान, (हब्बाखातून का गीत तथा अन्य सहगान); उर्मिला खन्ना (सितार, पंजाबी तथा डोगरी गीत, अन्य सहगान); मोहनी भान (शास्त्रीय संगीत, इनको एक रजत पदक उर्दू विभाग के रीडर डा० शकीलुर्रहमान ने देने की घोषणा की); श्यामा सेठी (पंजाबी तथा डोगरी गीत, सहगान एवं परिसज्जा); रत्नीकुमारी राज़दान (ग़ज़ल)।

दसवीं विशेष बैठक (१-३-६६) :— शीतावकाश के बाद विभाग के खुलने पर, परिषद् के संरक्षक एवं कश्मीर-मण्डल के सह-उपकुलपति श्री गुलाम अहमद मुख़्तार की विमान-दुर्घटना में (७-२-६६) असामयिक एवं दुखद मृत्यु पर शोक-संवेदना का प्रकाश करने के लिए शोक-सभा की गई।

सोलहवीं बैठक (१६-३-६६) का आयोजन विभाग के दो प्राध्यापकों डा० मोहिनी कौल तथा डा० अयूब खां को पीएच० डी० की उपाधि मिलने पर उनका सम्मान करने के हेतु किया गया गया। ये अध्यापक जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय के प्रथम पीएच० डी० हैं, यह विभाग एवं परिषद के लिए गौरव का विषय है। इस बैठक में कश्मीर-मण्डल के सब कालिजो के हिन्दी एवं संस्कृत के प्राध्यापकों को निमंत्रित किया गया और जलपान के बाद एक परिसंवाद किया गया जिसका विषय था ;— 'कश्मीर में हिन्दी-शिक्षण की समस्याएँ'। परिसंवाद एवं गोष्ठी की अध्यक्षता श्री प्रताप कालिज, श्रीनगर, के प्रो० काशीनाथ धर ने की।

बाईसवीं विशेष बैठक (१७-५-१६६६) :— विश्वविद्यालय के सह-कुलपति तथा प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री गुलाम मुहम्मद सादिक के ऊपर पाकिस्तानी जासूसों द्वारा, १६-५-६६ को, बारामूला में, जो कायरतापूर्ण हथ-गोला से आक्रमण किया गया, उस पर रोष प्रकट करने एवं श्रीमान

सादिक साहब की प्राणरक्षा पर हर्ष प्रकट करने के लिए यह विशेष बैठक की गई। इसका विवरण रेडियो से प्रसारित किया गया तथा स्थानीय पत्रों में प्रकाशित हुआ।

चौबीसवीं बैठक (२८-५-१९६६) :— दिवंगत नेता पण्डित नेहरू की वर्षी के अवसर पर की गई इस गोष्ठी में एक बहुत ही रोचक परिसंवाद हुआ। विषय था :— 'नेहरू का जीवन-दर्शन तथा उनका विश्व-शान्ति में योग'।

पच्चीसवीं विशेष बैठक (३-६-१९६६) :- यह बैठक दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष डा० नगेन्द्र नगाइच के सम्मान में आयोजित की गई। विभाग का निरीक्षण करने के बाद आदरणीय डा० साहब ने परिषद के सदस्यों के समक्ष भाषण दिया, जिसका विषय था :— 'साहित्य'। पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दोनों (एम० ए०) कक्षाओं के विद्यार्थियों तथा शोधार्थ-कार्यकर्त्ताओं का डा० साहब के भाषण से ज्ञानवर्धन हुआ। परिषद के पदाधिकारी एवं सदस्य डाक्टर साहब के प्रति-विशेष कृतज्ञ हैं।

इसके अतिरिक्त परिषद के औपचारिक गठन से पूर्व डा० ओम् प्रकाश (रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग), डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' (रीडर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग) तथा डा० राम गोपालसिंह चौहान (सह-आचार्य, हिन्दी-विभाग, आगरा कालेज, आगरा विश्वविद्यालय) भी विभाग में पधारे और उन्होंने विद्यार्थियों को अपने विचारों से अवगत कराकर उन्हें आभारी किया। समय-समय पर कश्मीर के हिन्दी लेखकों को परिषद् की ओर से आमंत्रित किया गया और उन्होंने अपनी रचनाएँ सुनाईं। श्री हरिकृष्ण कौल की कहानियाँ परिषद् के सदस्यों को विशेष रूप से प्रिय लगीं। उर्दू-विभाग के रीडर डा० शकीलुर्रहमान के प्रति मैं विशेष रूप से आभार-प्रदर्शन करती हूं, वे नियमित रूप से परिषद् की बैठकों में आते रहे और अपनी रचनाएँ भी सुनाते रहे।

सभापति डा० रमेशकुमार शर्मा, उप-सभापति डा० मोहिनी कौल, डा० अयूबखां तथा श्री भूषणलाल कौल (विभाग के अध्यापक तथा परिषद् की कार्य-कारिणी के सदस्य) ने भी समय समय पर अपनी रचनाओं को सुनाकर परिषद् के सदस्यों को लाभान्वित किया। यह

परम्परा सी बन गई थी कि प्रत्येक बैठक में विभाग के किसी न किसी अध्यापक द्वारा अपनी कोई रचना सुनाई जाती थी।

विद्यार्थियों द्वारा २० कहानियाँ, २१ कविताएँ, ११ रोचक वार्ताएँ, एक एकांकी नाटक तथा ७ लेख पढ़कर सुनाए गये। ये सब मौलिक रचनाएँ थीं और इनमें से कुछ की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। सर्वश्रेष्ठ रचनाओं पर पारितोषिक दिये जाने की घोषणा की गई।

इसके अतिरिक्त परिषद के मंत्री तथा कोषाध्यक्ष का 'इन्टरव्यू' रेडियो कश्मीर के प्रतिनिधि ने लिया, और उसे प्रसारित किया गया। विषय था "प्रेमचन्द के नारी-पात्र"।

परिषद् का समापन-समारोह १४-९-६६ को रीजनल इन्जीनियरिंग कालिज श्रीनगर, के प्रिन्सिपल, प्रो० मुनीस रज़ा की अध्यक्षता में हुआ। इसमें इस वर्ष परिषद् के सदस्यों द्वारा लिखी हुई सर्वश्रेष्ठ पांच रचनाएँ पढ़ कर सुनाई गईं। उत्सव में कश्मीर-मण्डल के हिन्दी के सभी प्राध्यापक निमंत्रित थे। परिषद के विद्यार्थी-पदाधिकारियों को तथा कुमारी सतोष ज़ारू, कुमारी सुदेश आनन्द, कुमारी मोहिनी भान तथा श्रीमती रत्नी कुमारी 'शान्त' को प्रमाण-पत्र भेंट किये गये। उत्सव पूर्णरूपेण सफल रहा।

परिषद के जिन उद्देश्यों का ज्ञापन आरम्भ में किया गया था, लगभग सभी में उसे सफलता प्राप्त हुई है। केवल प्रकाशन के क्षेत्र में विश्वविद्यालय के अधिकारियों की उदासीनता के कारण विशेष प्रगति नहीं हो सकी। स्वर्गवासी संरक्षक महोदय ने एक विशाल कार्यक्रम के प्रति सहमति प्रदान की थी, किन्तु उनकी आकस्मिक मृत्यु के कारण कुछ क्षेत्रों में (सदस्यों की रचनाओं एवं शोध-प्रबन्धों के प्रकाशन, तथा पर्यटन) परिषद की गतिविधि अपेक्षाकृत रूप में कम ही रही।

अन्त में, मैं सभापति, उप-सभापति तथा विभाग के प्राध्यापकों के प्रति आभार-प्रदर्शन करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिनके पथ-प्रदर्शन के अभाव में अपने कार्यभार को संभालना मेरे लिए असंभव होता। शोधार्थ कार्यकर्त्ता, कुमारी सन्तोष ज़ारू, मोहनलाल बाबू तथा अमरनाथ की भी मैं आभारी हूं; उन्होंने नियमित रूप से बैठकों में भाग लिया और अपनी रचनाएं सुनाईं। मेरे सहयोगियों, फूलाकुमारी मोज़ा (उप मंत्री). श्यामा सेठी तथा विनोद कुमार (कोषाध्यक्ष), उर्मिल खन्ना (उप-मंत्री-सांस्कृतिक कार्यक्रम)

ने जो सहयोग दिया उसके लिए क्या कहूँ ? उन पर सहपाठी, होने के नाते, मेरा अधिकार है और उनका स्नेहपूर्ण सहयोग मेरा संबल रहा है।

मुझे हर्ष है कि इस वर्ष साहित्यिक एवं सांस्कृतिक, दोनों क्षेत्रों में परिषद् को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है और आशा करती हूँ कि अगले वर्ष के मंत्री को मैं कार्य-भार को सुचारु तथा सुव्यवस्थित रूप में सौंपने में समर्थ होऊँगी ! जयहिन्द।

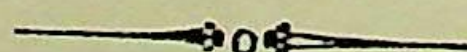
राजकुमारी राज़दान
मंत्री

× × × × ×

— मैत्री —

जे न मित्र दुख होंहि दुखारी,
तिनहिं बिलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि-सम रज करि जाना,
मित्र के दुख रज मेरु-समाना।
जिनकर अस मति सहज न आई,
ते सठ कत हठि करत मिताई।

—गोस्वामी तुलसीदास



शत्रु, अग्नि, रोग और ऋण, इन्हे पूर्ण रूपेण नष्ट कर देना चाहिए, अन्यथा दुबारा उभरने पर परम घातक सिद्ध होते हैं।

—पंचतन्त्र

सम्पादकीय

सन् १२६५ में फ्लोरेन्स (इटली) में दाँतेने जन्म लिया। संसार में अपनी महान् कृति "द डिवाइन कॉमडी" के लिए प्रसिद्ध, इस साहित्यकार की वर्षी (सप्तशती) सम्पूर्ण संसार में मनाई गई! 'इनफर्नो' — 'पर्गेटोरियो' 'पैराडाइसो' के माध्यम से इस कृति में कवि ने मानसयात्रा का चित्रण किया है। जिस प्रकार 'कामायनी' में श्रद्धा मनु को आनन्दलोक तक पहुँचाती है उसी प्रकार दाँते की इस कथा में कवि को उसकी प्रेयसी "बीयट्रिस" आनन्द एवं शान्ति तक पहुंचाती है। मार्ग-दर्शक के रूप में कवि 'वर्जिल' का चित्रण है। शैतान की नई व्याख्या और मानव की मानसयात्रा का चित्रण करने के लिए प्रसिद्ध, इस कवि के प्रति, हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

१९६५-६६ के इस वर्ष में अमरीका में एक नया आन्दोलन चला, "God Is Dead"। इस विषय पर अनेक चर्चाएँ और परिसंवाद हुए। बदलती हुई मान्यताओं एवं मूल्यों के इस युग में यह एक अति-महत्वपूर्ण विषय है, इस पर विश्वविद्यालयों में परिसंवाद एवं चर्चाएँ होना अति-आवश्यक है। हमारी यह परम्परा रही है (कस्मै देवाय हविषा विधेम्) कि 'शंका और प्रश्न' के माध्यम से हम ज्ञान की ओर अग्रसर होते आये हैं। विचारणीय है :—

(१) क्या भगवान था? (२) यदि पूर्वकाल में था (मान्य था) तो क्या अब भी है (मान्य है) या मर चुका है? (मान्यता वृथा हो चुकी है) (३) धर्म और भगवान की मान्यता का क्या सम्बन्ध है और आज हम दोनों में किसे (या दोनों को) कितनी मान्यता दें/देते हैं?

यह वर्ष "अन्तर्राष्ट्रिय सहकारिता वर्ष" के रूप में भी मनाया गया। विभाग में इस के विषय में 'नेहरू-परिचर्चा' का आयोजन किया गया और विद्यार्थियों एवं शिक्षकों ने उस में सक्रिय भाग लिया।

भारत के इतिहास में पिछला वर्ष इस लिए भी याद किया जायगा कि इस वर्ष के अगस्त मास (१९६५) में हमारे धर्मान्ध पड़ोसी पाकिस्तान ने कश्मीर को हड़पने का जघन्य एवं असफल प्रयत्न किया। कश्मीर की जनता की एकता तथा देश के फौजी जवानों के शौर्य ने उस कायरता पूर्ण आक्रमण का मुँह-तोड़ उत्तर दिया। "कश्मीर की सरकार तथा जनता भारत

के प्रति प्रेम और वफ़ादारी का नमूना बन गई !" केन्द्रीय सरकार की ओर से कुछ और सचेत गतिविधि तथा कश्मीर की जनता का सक्रिय सहयोग भविष्य में भी शत्रु को इसी प्रकार कुचलता रहेगा इसकी हमें पूर्ण आशा है। संसार का इतिहास साक्षी है कि धर्मान्धता, तथा कपट-व्यवहार अन्त में नाश के कारण बनते हैं। भारत 'धर्म-निरपेक्षता की कसौटी पर खरा उतरा हैं।'

संसार की जनता इस समय "एक खतरनाक दौर से गुज़र रही है"। वियतनाम की लड़ाई विश्व-युद्ध के रूप में भड़कने को तैयार है। "स्वतन्त्रता अविभाज्य है; उसकी प्रत्यक स्थान पर रक्षा करनी है, चाहे वियतनाम हो चाहे हिमालय के आंचल में," अमरीकी दूतावास से प्राप्त एक पत्र के इस कथन का हम पूर्ण समर्थन करते हैं। चीन की साम्राज्यवादी नीति तथा उसके पाकिस्तान-प्रेम से उद्भूत उसकी भारत-विरोधी भावना के संदर्भ में भारत की जनता का बहुमत अमरीकी सरकार के साथ है और उसकी प्रत्येक कार्यवाही एवं उसकी रणनीति का समर्थन करता है, यह हर्ष का विषय है। इसी के साथ साथ हम Indo-American Foundation का भी स्वागत करते है और आशा करते हैं कि भविष्य में भारत को अमरीका के इस सहयोग से शिक्षा-स्तर को उन्नत करने में सहायता मिलेगी।

अपने दिवंगत प्रधानमंत्री, श्री लाल बहादुर शास्त्री के प्रति 'वितस्ता-परिवार' की ओर से हम श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। उनके विषय में, तथा उनकी उपलब्धियों के विषय में, अब और क्या कहा जा सकता है— सारा देश उनसे परिचित है।

गत ७-२-६६ की विमान-दुर्घटना में कश्मीर-मण्डल के सहउपकुलपति श्री गुलाम अहमद मुख्तार की जो अकाल एवं दुखद मृत्यु हो गई थी उसके विषय में 'परिषद्' की ओर से शोक-सभा की गई थी; मुख्तार साहब, अपनी काय-कुशलता एवं धर्म-निरपेक्षता के लिए प्रसिद्ध थे। हिन्दी-विभाग के प्रति उनका विशेष प्रेम था। 'वितस्ता-परिवार' उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। इसी अंक में अन्यत्र मुख्तार साहब के विषय में एक लेख भी छपा है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति के लिए केन्द्रीय सरकार सप्रयत्न है। अनेक छात्रवृत्तियाँ (२५ रु० से १२५ प्रतिमास तक) अहिन्दी-भाषी-प्रदेशों के हिन्दी-छात्रों को दी जातीं हैं। विभाग के १३ विद्यार्थियों को १०० रु० प्रति मास की छात्र-वृत्तियाँ मिल रही है। प्रदेशीय सरकार तथा विश्व-विद्यालय के अधिकारियों का यदि कुछ और सहयोग मिल सके तो कश्मीर में हिन्दी के शिक्षण की समस्याएँ हल की जा सकती हैं। इस सत्र में "कश्मीर में हिन्दी-शिक्षण की समस्याएँ" विषय परएक परिचर्चा का आयोजन विभाग की ओर से किया गया था, जिस में कश्मीर-मण्डल के सभी हिन्दी प्राध्यापक निमंत्रित थे। इस प्रकार की गोष्ठियों तथा परिसंवादों की यहाँ बहुत आवश्यकता है। विभाग की ओर से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय को सात परियोजनाएँ भेजी गई है जिनमें अनुमानतः व्यय लगभग २,३०,०००) रु० आँका गया है। विश्व-विद्यालय-अधिकारिकों के सहयोग से यदि ये कार्य आरम्भ किए जा सके तो कश्मीरी भाषा के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन (हिन्दी, डोगरी अन्य भारतीय भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में) तथा उसके प्रामाणिक अनुवाद की दिशा में पर्याप्त प्रगति हो सकेगी। हिन्दी-प्रेमियों के सामने, इस प्रदेश में, अनेक समस्याएँ हैं। यात्रा लम्बी है और गन्तव्य तक पहुंचने के लिए अथक तपस्या, एकता, भाईचारे तथा सहयोग की आवश्यकता है। बाधाएँ हमें शक्तिप्रदान करें और पण्डित नेहरू के उपदेश के अनुसार हम इस तरह मंजिल पर पहुँचे:—

"इस तरह तय कीं हैं, हमने मंज़िले,
गिर पड़े, गिर कर उठे, उठ कर चले."

यही हमारी कामना है। इसकी पूर्ति के लिए हमें न केवल प्रदेश की जनता और सरकार के सहयोग की ही आवश्यकता अपितु देश भर के विश्वविद्यालयों के हिन्दी-विभागों तथा देश भर के हिन्दी-प्रेमियों के सहयोग एवं कृपा की हम कामना करते हैं!

इस वर्ष, (३-६-६६ को) दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष डा० नगेन्द्र नगाइच का प्रसार भाषण; विश्वविद्यालय की ओर से आयोजित किया गया। विषय था "काव्य-बिम्ब: स्वरूप और प्रकार"। बिम्ब-विधान की प्राचीन एवं आर्वाचीन मान्यताओं के संदर्भ मे पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तों में बिम्ब के स्वरूप और प्रकार का विवेचन करते हुए आचार्य महोदय ने

काव्य-बिम्बों के विषय में अपनी मौलिक विश्लेषण-पद्धति का प्रयोग करते हुये काव्य-बिम्बों के स्वरूप एवं विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डाला। भाषण के बाद श्रोताओं के प्रश्नों का उन्होंने उत्तर दिया और इस जटिल एवं सूक्ष्म विषय को सुग्राह्य बना कर श्रोताओं का ज्ञानवर्धन किया। विभाग के अध्यापक एवं विद्यार्थी उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं; उन्होंने विद्यार्थियों को 'साहित्य' (व्युत्पत्ति एवं व्याख्या) पर भी एक छोटा सा भाषण दिया और विभाग का निरीक्षण भी किया।

श्रद्धेय पं० जगन्नाथ तिवारी, जोकि विभाग के अध्यक्ष थे, अगस्त १९६५, में जम्मू-मण्डल में आचार्य एवं अध्यक्ष-पद पर विभूषित हुए। उनकी विदाई के अवसर पर एक समारोह किया गया। आज श्रीनगर के स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग में जो कुछ भी है, उसका जो भी स्थान है, उसकी जोभी उपलब्धियाँ हैं वे, सब पं० तिवारी के कारण ही है। १९६३ से १९६५ तक के अपने कार्यकाल में उन्होंने विभाग को जो स्थायित्व प्रदान किया - उसी का लाभ उनका शिष्यवर्ग भोग रहा है। उनके जाने के बाद उनके चित्र का अनावरण [अध्यापक-कक्ष में] विभाग में सह-उपकुलपति महोदय द्वारा किया गया। पण्डित तिवारी के स्थानान्तरण के बाद वर्तमान अध्यक्ष [जोकि उनके शिष्य हैं] ने कार्य भार-संभाला और एक अन्य प्राध्यपक श्रीभूषणलाल कौल की नियुक्ति विभाग में की गई। श्री कौल विभाग के ही विद्यार्थी रहे हैं।

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, कश्मीर मण्डल, श्रीनगर, को इस बात का गौरव प्राप्त हुआ है कि यहाँ से इस विश्वविद्यालय की पीएच० डी० की प्रथम डिग्रियाँ विभाग के दो प्राध्यापकों को दी गई हैं। इस समय भी विभाग में १३ अनुसंधित्सु कार्य कर रहे हैं, इनमें से तीन को भारत सरकार की ओर से १००, रु० प्रतिमास की छात्रवृत्ति दी जा रही है। चार विद्यार्थी कश्मीरी तथा हिन्दी भाषा के साहित्य की विभिन्न धाराओं के तुलनात्मक अध्ययन का कार्य कर रहे हैं। डोगरी और हिन्दी के तुलनात्मक अध्ययन पर कार्य किये जाने की रूपरेखा बन चुकी है और अगले वर्ष, आशा है, कार्यारम्भ कर दिया जायेगा। श्री भू० ला० कौल [विभाग में प्राध्यापक] का शोधकार्य समाप्त हो गया है और उनका प्रबन्ध परीक्षा के लिए प्रेषित किया जाने वाला है। इस वर्ष एम० ए० पूर्वार्द्ध में २० विद्यार्थी थे और उत्तरार्द्ध में १९, इनमें से उत्तरार्द्ध के छः विद्यार्थियों ने पूर्वार्द्ध की परीक्षा में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त

किए हैं। १६६५ की उत्तरार्द्ध की परीक्षा में १० विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। विभाग के पुस्तकालय का निरीक्षण किया गया और नई पुस्तकें लाई गईं। इस समय पुस्तकालय में लगभग २६०० पुस्तकें हैं।

अन्त में हम 'वितस्ता' के प्रकाशन के लिए दिवंगत सह- उपकुलपति के प्रति आभार प्रदर्शित करते हैं जिन्होने स्वतंत्र अनुदान की स्वीकृति देकर पत्रिका के प्रकाशन को सभव बनाया। पाकिस्तानी आक्रमण के कारण तथा प्रेस में आग लग जाने के कारण पत्रिका देर से निकल रही है- आशा है भविष्य में समय से इस का प्रकाशन हो सकेगा। श्रीनगर में एक भी, हिन्दी का, अच्छा टंकक [टाइपिस्ट] नहीं हैं - प्रेस की सुविधाएँ भी कामचलाऊ ही हैं, ऐसी परिस्थितियों में 'नामेल प्रेस' के व्यवस्थापकों ने जो सहयोग दिया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

श्रीमान् सादिक़ साहब ने कृपा करकें जो संदेश भेजा और हमारा उत्साह - वर्धन किया उसके लिऐ हम उनके कृतज्ञ हैं, वे हमारे सहकुलपति भी हैं, इसलिए उन पर हमारा अधिकार भी है।

पत्रिका आपके सामने है। हमारी कठिनाइयों के संदर्भ में उसका मूल्यांकन करें और अपनी सम्मति हमें भेजने का कष्ट करें। पत्रिका में विद्यार्थियों का सक्रिय सहयोग रहा है और उनकी कृतियाँ भी छापी गई हैं। मैं अपने सहयोगियों का भी आभारी हूं, विशेषकर श्री भूषण लाल कौल [प्राध्यापक] तथा कु० राजकुमारी राज़दान [मंत्री, हिन्दी परिषद्] का जिन्होंने सदा, सर्वथा सहयोग देकर इस पत्रिका का प्रकाशन संभव बनाया।

—रमेश कुमार शर्मा

—•×•—

Santosh

Raj – Rattan

[illegible]
[illegible]

राष्ट्र - गान

जन-गन-मन अधिनायक जय हे !

भारत भाग्य विधाता

पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कलवंग,

विंध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग,

तव शुभनामे जागे, तव शुभ आशिष मांगे,

गाहे तव जय गाथा,

जन गण मंगल दायक जय हे, भारत भाग्य विधाता,

जयहे, जयहे, जयहे !

जय, जय, जय, जयहे !!

—०×०—

जयहिन्द

वितस्ता

VITASTA

Journal of the Post Graduate Department of Hindi, Kashmir Division, University of Jammu and Kashmir, Amarsinghbag, Srinagar, Kashmir, INDIA.

Vol. II **AUGUST 1966** **No. 1**

Printed at the Normal Press.